गंगा-पुस्तकमाला का इकहत्तरवाँ पुष्प

# तात्कालिक चिकित्सा

लालबहादुरलाल

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

( सुधा-संपादक )

# तात्कालिक चिकित्सा

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
( सुधा-संपादक )

# स्काउट और स्वास्थ्य-संबंधी चुनी हुई पुस्तकें

| | | | |
|---|---|---|---|
| स्वास्थ्य की कुंजी | १।) | जल-चिकित्सा | १॥) |
| स्वास्थ्य-रक्षा | ३) | तैल-चिकित्सा | ॥) |
| संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा | ॥=) | सरल चिकित्सा (तीन भाग) | १॥।) |
| चारु चिकित्सा | ॥।) | प्राणायाम | ॥।=), १।=) |
| संक्षिप्त शरीर-विज्ञान | ॥=) | स्काउट और स्वास्थ्य | ।-) |
| स्वस्थ-शरीर | ४।) | आरोग्य-दिग्दर्शन | ।≡) |
| मलावरोध-चिकित्सा | ।≡) | बालचर-जीवन | १) |
| उपवास-चिकित्सा | ॥।) | स्वास्थ्य-साधन | ३) |
| प्रकृति-चिकित्सा | ।=) | मानुषी अंग और स्वास्थ्य | ॥=) |
| सुगम चिकित्सा | =) | हमारे शरीर की रचना | ६॥।) |
| दुग्ध-चिकित्सा | =) | स्वास्थ्य और बल | १) |
| गृहवस्तु-चिकित्सा | ॥) | ब्रह्मचर्य | ॥), १।) |

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का इकहत्तरवाँ पुष्प

# तात्कालिक चिकित्सा



लेखक
लालबहादुरलाल

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ



प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।॥)]    संवत् १९८४    [सादो ५।)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीकेदारनाथ भार्गव
इलाहाबाद-ओरियंटल प्रेस
लखनऊ
[ पृष्ठ १-१२८ तक नवलकिशोर-प्रेस लखनऊ में छपे ]

# प्रस्तावना

प्राणिमात्र की सेवा करना मनुष्यों का परम कर्तव्य है। परंतु कभी-कभी, प्रबल इच्छा रहने पर भी, मनुष्य दूसरों की सेवा के लिये अपने को असमर्थ पाता है। यदि सड़क पर कोई गाड़ी के नीचे दब जाय, सीढ़ी से गिर जाय, अथवा किसी अन्य प्रकार से उसको ऐसी चोट लगे कि ख़ून निकलने लगे या हड्डी टूटने की आशंका हो, तो उसको तड़पते हुए देख-कर भी साधारण मनुष्य सिवा इसके और क्या कर सकता है कि दौड़-धूप के बाद किसी डॉक्टर को ले आवे। परंतु उस समय तक, संभव है, उस मनुष्य की अवस्था, केवल तात्कालिक सहायता न पहुँचने के कारण, बिगड़ जाय। इसलिये स्वयंसेवक लोगों को तात्कालिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

यह पुस्तक इसीलिये लिखी गई है। इसकी भाषा सरल है, और चित्रों से इसका आशय समझने में और भी सुग-मता हो गई है। इसके लेखक एक अनुभवी चर-शिक्षक और सुहृद देशभक्त हैं। आशा है, वह इसी प्रकार की देशोप-कारी पुस्तक लिखते रहेंगे।

रामनारायण मिश्र

(हेडमास्टर हिंदू-हाई स्कूल काशी)

# विषय-सूची

---

# वक्तव्य

संसार की विस्मय-जनक रचनाओं में मानव-शरीर भी एक अद्भुत प्राकृतिक यंत्र है। इस यंत्र का कार्य-क्रम प्रकृति के अटल नियमों पर अवलंबित है। अतः इसकी बनावट तथा उन नियमों का ज्ञान रखना प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। फिर ऐसे प्राणी को तो, जो यथाशक्ति संसार के प्राणियों की सेवा करना अपना धर्म और कर्तव्य समझता है, इनका ज्ञान परमावश्यक है।

मनुष्य की असावधानी तथा नियमों की अनभिज्ञता के कारण यह मनुष्य-शरीर प्रायः टूटा-फूटा एवं अस्वस्थ रहा करता और विनाश को प्राप्त हुआ करता है। फलतः इसे प्रतिक्षण किसी सुयोग्य डॉक्टर अथवा वैद्य की आवश्यकता पड़ा करती है। किंतु प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर उसकी सहायता प्राप्त करना कठिन होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी शरीर-रचना तथा उसके स्वास्थ्य-नियमों का यथोचित ज्ञान रक्खे, ताकि समय-कुसमय, डॉक्टरों अथवा अनुभवी वैद्यों की अनुपस्थिति में भी, वह अपनी, अपने कुटुंबियों की, मित्र-मंडली और अन्य प्राणियों की यथार्थ तात्कालिक सहायता कर सके। इसी

उद्देश्य को सम्मुख रखकर पश्चिमी देशों में "सेंट जान एंबुलेंस एसोशिएशन" का संगठन हुआ है। भारत में भी उक्त एसोशिएशन का कार्य प्रारंभ हो गया है। किंतु उसका क्षेत्र अभी बहुत ही संकीर्ण है। हमारे प्रांत के शिक्षा-विभाग ने उच्च कोटि की शिक्षा अँगरेज़ी-स्कूलों के लिये अनुमोदित की है, जो कितनी ही उच्चकोटि की पाठशालाओं में 'First Aid, Hygiene and Sanitation for the Mackenzie School Certificate Examination classes' के नाम से दी जा रही है। किंतु हिंदी-पाठशालाओं की कौन कहे, अँगरेज़ी-स्कूलों में ही पर्याप्त रूप से इसका प्रचार नहीं हो सका है। आशा है, यह छोटी-सी पुस्तक हमारी हिंदी-पाठशालाओं और अँगरेज़ी-स्कूलों के काम की होगी।

लेखक ने इसी विषय की शिक्षा, मिर्ज़ापुर के गवर्नमेंट-हाई स्कूल में तीन वर्ष तक दी है, और प्रतिवर्ष तीस-चालीस विद्यार्थी उसमें उत्तीर्ण होते आ रहे हैं। इनमें से कई उच्चकोटि के अध्यापक भी हैं। यह पुस्तक मेरे प्रायः उन्हीं व्याख्यानों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों के समक्ष दिए गए हैं। मैंने यह पुस्तक St. John Ambulance Association, Provincial Centre, U. P., Allahabad के Joint Hony Secretary Mr. W. G. P. Wall I. E. S. के पास भेजी थी। आपने पुस्तक का आद्योपांत अवलोकन कराकर, मेरे पास यह लिखकर लौटा दी—"The Lectures

on First Aid, Hygiene and Sanitation are quite suitable for the Course." अर्थात् तात्कालिक चिकित्सा, स्वच्छता और स्वास्थ्य पर लिखे गए व्याख्यान कोर्स के बिलकुल उपयुक्त हैं।

बाद को यह पुस्तक सेवा-समिति-ब्वॉय स्कॉउट-एसोशिएशन, इंडिया के चीफ़ आर्गेनाइज़िंग कमिश्नर पं० श्रीराम बाजपेयीजी के पास भेजी गई। आपने इस पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, और अपने ६ जनवरी, १९२६ के पत्र में यों लिखा—"I am quite sure the book will prove very useful to the Scout world." अर्थात् मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक बालचर-संसार में बड़े काम की होगी।

इन महान् और उत्तरदायी पुरुषों की सम्मतियों से पाठक समझ गए होंगे कि यह पुस्तक देश-सेवा-कार्य में कितनी उपयोगी होगी। आशा है, मेरे शिक्षित भाई इस छोटी-सी पुस्तक को अपनाकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

लालबहादुरलाल

# तात्कालिक चिकित्सा

## पहला व्याख्यान

### मनुष्य-शरीर की स्थूल रचना

मनुष्य-शरीर के मुख्य तीन भाग हैं—( १ ) सिर ( Head ), ( २ ) धड़ ( Trunk ) और ( ३ ) ऊपर तथा नीचे की शाखाएँ (Upper and Lower Limbs)। वास्तव में यह मनुष्य-शरीर हड्डियों का एक ढाँचा है, जिसके अंदर शरीर को जीवित रखनेवाले मुख्य-मुख्य अंग अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। इस अस्थि-पंजर के ऊपर मांस, और मांस के ऊपर त्वचा की खोल चढ़ी हुई है।

समस्त शरीर में कुल २४६ भिन्न-भिन्न हड्डियाँ हैं, जिनमें दाँतों की हड्डियाँ भी सम्मिलित हैं। ये हड्डियाँ भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न आकार की हैं। सब हड्डियों से संगठित ढाँचे का ही नाम अस्थि-पंजर ( Skeleton ) है।

इस अस्थि-पंजर के तीन मुख्य कार्य हैं—( १ ) यह शरीर को एक मुख्य आकार में बनाए रखता है, ( २ )

शरीर के भीतरी आवश्यक कोमल अंगों की रक्षा करता है, और (३) शरीर में गति उत्पन्न करता है।

सारे शरीर का राजा मस्तिष्क (Brain), खोपड़े (Skull) के मज़बूत क़िले में सुरक्षित राज्य करता है। यह खोपड़ा आठ चिपटी एवं मज़बूत हड्डियों से बना हुआ एक संदूक़ है।

सिर के नीचे के भाग (धड़) में दो कोठरियाँ हैं। ऊपर की कोठरी का नाम वक्षःस्थल (Chest or Thorax) और नीचे की कोठरी का नाम पेट (Abdomen) है। वक्ष का निर्माण बारह जोड़ी पसलियों (Ribs), वक्ष की हड्डी (Breast bone or Sternum) तथा रीढ़ की हड्डी (Spine) द्वारा हुआ है। धड़ के निम्न भाग अर्थात् पेट में विशेष हड्डियाँ नहीं हैं। उसके पिछले भाग से केवल रीढ़ का सिलसिला चला गया है। यह रीढ़ की हड्डी अर्थात् मेरु-दंड खोपड़े से प्रारंभ होकर जाँघों की हड्डी (Pelvis or Hipbone) से जुड़ा हुआ है। यह रीढ़ ही शरीर का स्तंभ है, जो प्रायः २४ या २६ छोटी-छोटी काशेरुओं (Vertebra) से मिलकर निर्मित है। दो काशेरुओं के बीच में कार्टिलेज (Cartilage) की एक मुलायम एवं लचीली पट्टी दी हुई है, जिसमें होकर शरीर में विचरनेवाली नसें और रगें निकली हुई हैं। इस प्रकार रीढ़ एक ठोस और लगातार हड्डी न होकर पोली एवं

स्प्रिंगदार दंड है, जो उछलने-कूदने के समय धक्का खाकर, रेल-गाड़ियों के बट ( Butt ) के समान, धक्के के असर को मस्तिष्क आदि तक नहीं पहुँचने देता। दूसरी खूबी इस मेरु-दंड की यह है कि इसकी शक्ल बिलकुल सीधी नहीं है। इस कारण भी धक्के का प्रभाव मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाता।



मेरुदंड

धड़ के ऊपरी भाग अर्थात् वक्षः स्थल-गह्वर के अंदर शरीर के चालक अंग, हृदय ( Heart ) और फुफ्फुस याने फेफड़े ( Lungs ) हैं, जिनक रक्षा पसलियों द्वारा निर्मित कवच करता रहता है। धड़ के निम्न भाग उदर में शरीर के पोषक अंग, आमा-शय ( Stomach ), छोटी और बड़ी अँतड़ियाँ ( Small and Large Intestines ), क्लोम ( Pancreas ), प्लीहा ( Spleen ), वृक्क ( kidneys ), यकृत ( Liver ) और मूत्राशय ( Bladder ) हैं।

शरीर के तीसरे मुख्य भाग के अंतर्गत दो ऊर्ध्व एवं दो

निम्न शाखाएँ ( The Upper & Lower limbs ) हैं। ऊर्ध्व शाखाएँ कंधे की हड्डियों द्वारा धड़ से जुड़ी हुई हैं। प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा के तीन भाग हैं—( १ ) कुहनी के ऊपर का भाग ( The upper Arm ), ( २ ) कुहनी और हाथ के बीच का भाग ( The forearm ) और ( ३ ) हाथ ( The hand )।

प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा में नीचे लिखी अस्थियाँ हैं—

| | |
|---|---|
| ( १ ) कुहनी के ऊपर के भाग में ३ | १. स्कंधास्थि ( Scapula or Shoulder-blade ) |
| | २. अक्षक ( Clavicle or Collar Bone ) |
| | ३. प्रगंडास्थि ( Humerus ) |
| ( २ ) कुहनी और हाथ के बीच के भाग में २ | १. अंतःप्रकोष्ठास्थि ( Ulna ) |
| | २. बहिःप्रकोष्ठास्थि ( Radius ) |
| ( ३ ) हाथ में २७ | ८ कलाई की हड्डियाँ (Carpus) |
| | ५ करभास्थि ( Meta Carpus ) |
| | १४ पोर्वे ( Phalanges of the Fingers ) |

हाथ के तीन भाग हैं—( १ ) कलाई, ( २ ) हथेली और ( ३ ) उँगलियाँ तथा अँगूठा। शरीर की निम्न शाखाएँ भी ऊर्ध्व शाखाओं की भाँति प्रत्येक तीन भागों में विभाजित

हैं—जाँघ, नीचे की टाँग और पैर। प्रत्येक निम्न शाखा में निम्न-लिखित अस्थियाँ हैं—

(१) जाँघ में २
- १. नितंबास्थि (Hip-bone)
- २. उर्वस्थि (Femur)

(२) नीचे की टाग में ३
- १. घुटने की हड्डी (Knee-Cap)
- २. जंघास्थि (Tibia or Shinbone)
- ३. अनुजंघास्थि (Fibula or Splint bone)

(३) पैर में २६
- ७ टखने की अस्थियाँ अथवा कूर्चास्थियाँ (Tarsal bonss)
- ५ प्रपाद की अस्थियाँ (Meta-Tarsal bonss)
- १४ पोर्वे (Phalanges of the toes)

शरीर में उर्वस्थि के सदृश बड़ी एवं मज़बूत और कोई हड्डी नहीं है।

शरीर में कुल तीन प्रकार की हड्डियाँ हैं—(१) लंबी और पोली, (२) चिपटी और (३) अनियमित आकार की (Irregular)। लंबी और पोली हड्डियाँ ऊर्ध्व एवं निम्न शाखाओं में हैं।

खास-खास चिपटी हड्डियाँ खोपड़ी में हैं, और अनियमित आकार की हड्डियाँ रीढ़ की गुठलियाँ (Vertebra of the Spine) हैं।

'भाव-प्रकाश' के अनुसार मनुष्य-शरीर के अंतर्गत कुल ३०० हड्डियाँ हैं—हाथ और पैरों में सब मिलाकर १२०, पसलियों, नितंबों, छाती, पीठ और उदर में सब मिलाकर ११७ और गर्दन के ऊर्ध्व भाग अर्थात् सिर में ६३।

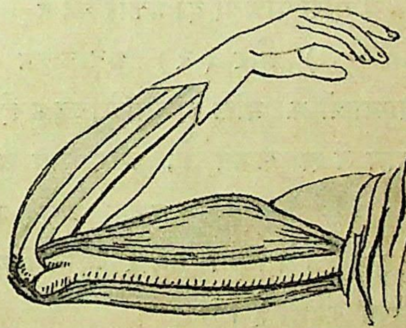
ये शरीर की भिन्न-भिन्न हड्डियाँ जहाँ पर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं, उन स्थानों को जोड़ ( Joints ) कहते हैं। ये जोड़ दो या दो से अधिक हड्डियों के एक स्थान पर मिलने से बने हैं। इन मिलनेवाली हड्डियों के सिरों पर चिकनी कार्टिलेज लगी रहती है, और ये सिरे एक दूसरे पर लिगामेंट्स (Ligaments) या सौत्रिक तंतुओं द्वारा बँधे होते हैं, जो हड्डियों को किसी विशेष दिशा में घूमने देते हैं। ये जोड़ विशेषकर दो प्रकार के हैं—( १ ) घुंडीदार ( Ball and socket Joints) और ( २ ) साँकलदार (Hinge Joints)।

घुंडीदार जोड़ में, एक हड्डी दूसरी हड्डी में बने हुए छल्ले में होकर, स्वतंत्रता-पूर्वक प्रत्येक दिशा में घूमती है। ऐसे जोड़ कंधे और कमर के जोड़ हैं। दूसरे प्रकार के साँकल-सदृश जोड़ केवल ऊपर-नीचे अथवा दाएँ-बाएँ ही घूम सकते हैं, जैसा कुहनी और घटने के जोड़ों में देखा जाता है। इनके अतिरिक्त शरीर में अचल संधियाँ ( Fixed Joints) भी हैं। इस प्रकार की संधियाँ विशेषतः खोपड़े में मिलती ह। सुश्रुत और भाव-प्रकाश में कुल २१० संधियाँ लिखी हैं। डॉक्टरी मत के अनुसार सारे शरीर में २९६

तो केवल चेष्टावाली (चल) संधियाँ हैं। हाथ, पैर, जबड़े तथा कमर में चेष्टा-युक्त और शेष स्थानों में स्थिर या अचल संधियाँ हैं। हाथ-पैरों में मिलाकर ६८, कोष्ठ में ५९ और ग्रीवा तथा ग्रीवा के ऊर्ध्व भाग अर्थात् सिर में सब मिलकर ८३ संधियाँ हैं। कोष्ठ की संधियों में से कमर में ३, पीठ की रीढ़ में २४, दोनों पसलियों में २४ और वक्ष में ८ हैं।

पुट्ठे अथवा मांस-पेशियाँ (Muscles)

शरीर में मांस हर जगह रहता है, कहीं थोड़ा और कहीं अधिक। जितनी गतियाँ शरीर की होती हैं, वे सब इसी मांस द्वारा होती हैं। चलना-फिरना, हाथ उठाना, मुँह खोलना, बोलना, साँस लेना, शरीर में रक्त का दौड़ना — ये सब कार्य मांस द्वारा ही होते हैं। कंकाल से लगा हुआ मांस बहुत-से छोटे-छोटे गट्ठों से बना है। इन पृथक्-पृथक् गट्ठों को पुट्ठे या पेशियाँ कहते हैं। ये पुट्ठे या पेशियाँ आपस में सौत्रिक तंतुओं द्वारा जुड़ी



मांस-पेशियाँ

रहती हैं। किंतु जो मांस पेशियाँ आशयों, नलियों, मार्गों और हृदय आदि अंगों में हैं, वे पृथक्-पृथक् पेशियों

में विभक्त नहीं हैं। इन मांस-पेशियों में यह गुण है कि ये सिकुड़कर मोटी तथा छोटी हो सकती हैं, और फिर फैलकर पहले-सी हो जाती हैं।

मांस-पेशियों के सिरे अस्थियों, कार्टिलेजों, त्वचा या झिल्लियों से जुड़े रहते हैं। इस कारण जब कोई मांस-पेशी सिकुड़कर छोटी होती है, तो उस चीज़ को, जिससे वह जुड़ी रहती है, अपने साथ खींचती है। इस प्रकार जोड़ों में गति उत्पन्न होती है। शरीर में प्रायः ५१९ मांस-पेशियाँ हैं। इनमें से ४५ अस्थियों की गति के काम में आती हैं। भाव-प्रकाश के मत से मनुष्य-शरीर में कुल ५०० मांस-पेशियाँ हैं, जिनमें ४०० शाखाओं में, ६६ कोष्ठ में और ३४ ग्रीवा के ऊर्ध्व भाग में हैं।

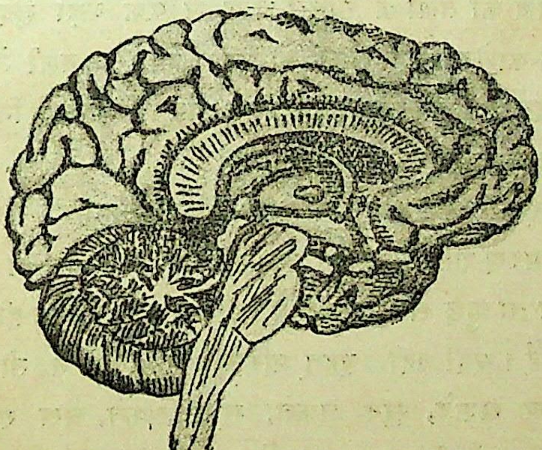
ये मांस-पेशियाँ दो प्रकार की हैं—(१) ऐच्छिक (Voluntary) और (२) अनैच्छिक (Involuntary)। शाखाओं की मांस-पेशियाँ ऐच्छिक हैं। उन्हें हम जब चाहें, काम में ला सकते हैं, और जब चाहें, रोक सकते हैं। पलक आदि की मांस-पेशियाँ अनैच्छिक हैं। वे बिना हमारे ध्यान दिए अपना काम स्वयं करती रहती हैं।

---

## दूसरा व्याख्यान

### शरीर के भीतरी अंग ( The Internal Organs )

सिर के मज़बूत खोपड़े ( Cranium or Skull ) के अंदर शरीर का शासनकर्ता मस्तिष्क ( Brain ) निवास करता है। यह मस्तिष्क कुछ-कुछ अंडाकार होता है। इसका पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा और मोटा होता है। लंबाई इसकी प्रायः ( सामने से पीछे तक ) ६ से ६½ इंच, चौड़ाई ( एक कान से दूसरे कान तक ) प्रायः ५½ इंच और मोटाई प्रायः ५ इंच होती



मस्तिष्क

है। वास्तव में मस्तिष्क के तीन भाग हैं—बृहत् मस्तिष्क ( Cerebrum ), लघु मस्तिष्क ( Cerebellum ) और सुषुम्ना-शीर्षक ( Medulla oblongata )। मस्तिष्क का जो भाग ऊपर होता है, वह बृहत् मस्तिष्क है। इस बृहत् मस्तिष्क के दो टुकड़े होते हैं। इन दोनों टुकड़ों के बीच में एक दरार रहती है। यह बृहत् मस्तिष्क आँखों की भौंओं के ऊपर से प्रारंभ होकर सिर के पीछे जहाँ बालों का निकलना समाप्त होता है उसके १-२ इंच ऊपर तक, फैला हुआ है।

लघु मस्तिष्क बृहत् मस्तिष्क के नीचे रहता है। और, उसके नीचे सुषुम्ना-शीर्षक होता है।

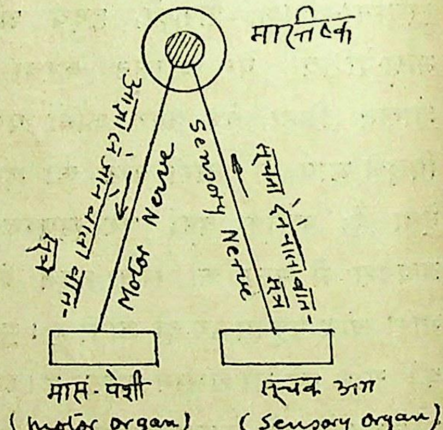
कपाल की तली के पिछले भाग में एक बड़ा छेद है, जिससे काशेरुक-नली मिली होती है। काशेरुक-नली में जो अंग रहता है, उसे सुषुम्ना कहते हैं। यह मस्तिष्क के निचले भाग सुषुम्ना-शीर्षक से निकलता है।

बृहत् मस्तिष्क के तीन बड़े कार्य हैं—बुद्धि, संकल्प और स्मरण-शक्ति। इसकी अनुपस्थिति या क्षति में हम लोग न तो कुछ सोच सकते हैं, और न कुछ स्मरण ही कर सकते हैं। यही नहीं, बृहत् मस्तिष्क के विना न तो हम कुछ देख सकते, सुन सकते, सूँघ सकते, चख सकते और न स्पर्श ही कर सकते हैं। इसके विना हम अपनी मांस-पेशियों को भी इच्छानुसार नहीं चला सकते।

लघु मस्तिष्क का कार्य विशेषकर ऊर्ध्व और निम्न शाखाओं पर शासन करना है। बिना लघु मस्तिष्क की आज्ञा न तो निम्न शाखाएँ हमारे शरीर को खड़ा ही रख सकती हैं, और न हम अपने हाथ-पैरों को इच्छानुसार चला ही सकते हैं। सुषुम्ना-शीर्षक, मस्तिष्क का सबसे निचला भाग है, और यह मस्तिष्क का सबसे अधिक आवश्यक अंग है; क्योंकि यदि सुषुम्ना-शीर्षक घायल हो जाय, तो तुरंत मौत हो जाती है। यह प्रायः डेढ़ इंच लंबा और आधा इंच मोटा होता है। यह सुषुम्ना-शीर्षक फेफड़ों, हृदय और भोजन-मार्ग की मांस-पेशियों पर शासन करता है। इसका कुछ शासन जिह्वा, नेत्र और कानों पर भी है। गर्दन के पिछले भाग में भारी चोट का लग जाना प्राणांत कर देता है; क्योंकि वहीं पर सुषुम्ना-शीर्षक होता है। ब्रह्मदेश में मृत्यु की सज़ा गर्दन के पिछले भाग में एक भारी चोट पहुँचाकर दी जाती है। सुषुम्ना-शीर्षक फेफड़ों की गति पर भी शासन करता है। अतः सुषुम्ना-शीर्षक के घायल होते ही फेफड़े अपना कार्य करना बंद कर देते हैं, और साँस रुक जाती अर्थात् मृत्यु आ जाती है।

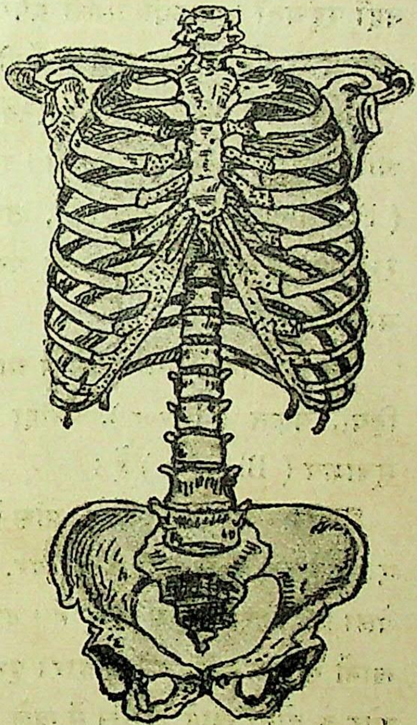
सुषुम्ना-शीर्षक से चलकर सुषुम्ना ( Spinal Cord ) काशेरुक-नली ( Spine ) में दौड़ता है, और अपने वात-सूत्रों ( Nerves ) को काशेरुक की गुठलियों के बीच-बीच

से निकालकर सारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों में भेजता है। ये वात-सूत्र बिजली के तारों की भाँति काम करते हैं। ये मस्तिष्क की आज्ञा भिन्न-भिन्न अंगों को, और उनकी सूचनाएँ मस्तिष्क को ले जाते और ले आते रहते हैं। इन सूत्रों का रंग सफ़ेद होता है, और ये बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। ये वात-सूत्र दो प्रकार के होते हैं—एक वे, जो शरीर के भिन्न-भिन्न अंग-प्रत्यंगों से मस्तिष्क तक सूचनाएँ लाते हैं; और दूसरे वे, जो मस्तिष्क से, उन सूचनाओं के उत्तर में, आज्ञा पहुँचाते हैं। किंतु अधिकांश ऐसे वात-सूत्र हैं, जो दोनों कार्य संपादन करते हैं।




उदाहरण-स्वरूप, यदि मेरा पैर किसी दूसरे के जूते के अंदर दब जाता है, तो वहाँ का सूचक वात-सूत्र उक्त कार्य की सूचना तुरंत मस्तिष्क को देता है, और मस्तिष्क तुरंत उस पर विचार कर दूसरे या उसी वात-सूत्र द्वारा (आज्ञा-वाहक सूत्र) उचित आज्ञा भेजता है। उक्त स्थान की मांस-पेशियाँ सिकुड़कर और फैलकर तुरंत पैर को हटा

लेती हैं। तत्पश्चात् मस्तिष्क शरीर के अन्य अंगों को आज्ञा देता है—जैसे मुख को कि वह उक्त मनुष्य को चैतन्य कर दे। और, यदि मस्तिष्क की यह धारणा होती है कि उसने जान-बूझकर शरारतन् ऐसा किया है, तो वह हाथ को आज्ञा देता है कि वह उसे पकड़े या थप्पड़ लगावे। ये सब कार्य थोड़े ही समय के अंदर हो जाते हैं। कारण, वात-सूत्रों में होकर सूचना या आज्ञा एक सेकंड में १४० फ़ीट की गति से चलती है।



धड़ का अस्थि-पंजर

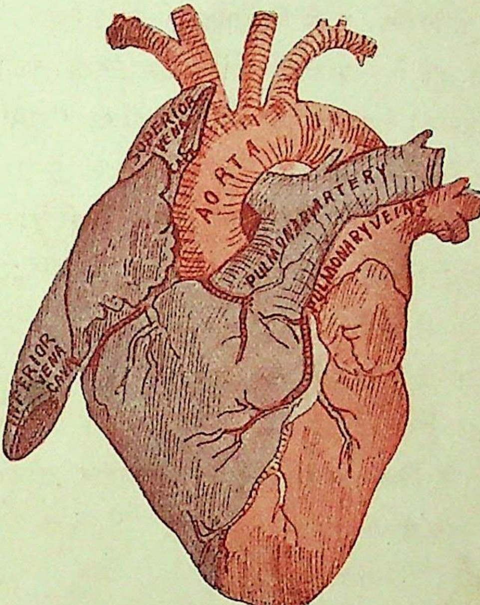
सिर के गह्वर के बाद शरीर के मध्य-भाग, धड़ में, दो गह्वर हैं—वक्षःस्थल और उदर। धड़ का ऊर्ध्व भाग, १२ जोड़ी पस-लियों तथा उर्वस्थि और काशेरुक-दंड ( Spine ) से घिरा हुआ एक मज़बूत संदूक़ है, जिसमें शरीर के संचालक अं।

हृदय, रक्त की बड़ी-बड़ी और प्रधान नलियाँ, फेफड़े और उनसे जुटी हुई सुषुम्ना या वायु-नलियाँ और अन्न-प्रणाली (Gullet or Food-pipe) हैं। पसलियों में भी केवल ऊपर की सात जोड़ी, काशेरुक-दंड से निकलकर वक्षोऽस्थि (Sternum) से जुटी हुई हैं; आठवीं, नवीं और दसवीं वक्षोऽस्थि तक नहीं पहुँचतीं। आठवीं पसली ऊपरवाली सातवीं से, नवीं आठवीं से और दसवीं नवीं से बँधी रहती है।

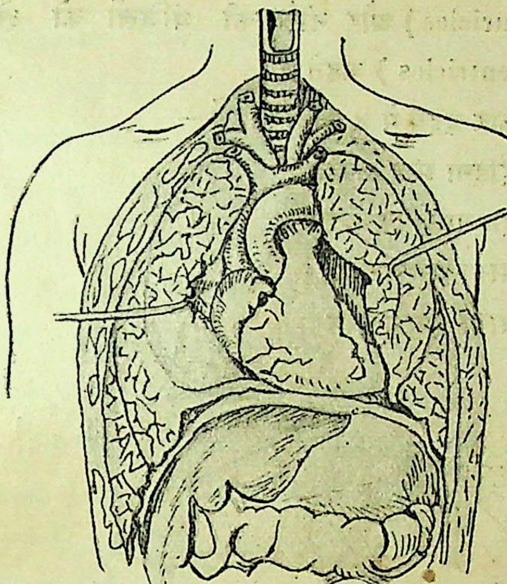
सबसे नीचे की ११वीं और १२वीं पसली छोटी होती हैं, और वक्षोऽस्थि से नहीं मिलतीं। इन्हें तैरती हुई पसलियाँ (Floating Ribs) कहते हैं, तथा ८, ६, १०, ११ और १२वीं जोड़ी पसलियों को झूठी पसलियाँ (False Ribs) भी कहते हैं।

धड़ के निम्न भाग उदर में आमाशय, छोटी-बड़ी अँतड़ियाँ, यकृत (Liver), प्लीहा (Spleen), वृक्क और मूत्राशय (Bladder) हैं।

**हृदय**—यह अनैच्छिक मांस-पेशियों द्वारा बना हुआ एक मज़बूत, बँधी मुट्ठी के बराबर, साधारण सेब-जैसा एक थैला है, जिसमें चार ख़ाने हैं। दाहने दो ख़ाने, बाएँ दोनों ख़ानों से एक मज़बूत पर्दे द्वारा पृथक् किए हुए हैं। दाहनी ओर के दोनों ख़ाने आपस में खुले हुए हैं, और बाईं ओर के दोनों ख़ाने आपस में बंद। हृदय के दाहने कोष्ठों में सारे शरीर से रक्त इकट्ठा होता रहता और बाएँ कोष्ठों से सारे शरीर में


SUPERIOR VENA CAVA
AORTA
PULMONARY ARTERY
PULMONARY VEINS
PULMONARY ARTERY
INFERIOR VENA CAVA

हृदय



वक्षःस्थल के भीतरी अंग और उदर

भेजा जाता है। हृदय का अधिकांश वक्षःस्थल की बाईं ओर रहता है। इसी कारण बालचर लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं, तब आपस में बायाँ हाथ मिलाते हैं, जिसका तात्पर्य होता है कि "आपको हृदय के पास रखता हूँ।"

यह हृदय दोनों फेफड़ों के बीच, वक्ष के भीतर, सुरक्षित रहता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हृदय-कोष्ठ भीतर से एक खड़े मांस के पर्दे से दाहने और बाएँ पक्ष में विभाजित है, जिनमें आपस का कोई संपर्क नहीं होता। प्रत्येक पक्ष में दो-दो मंज़िलें होती हैं। ऊपर की मंज़िलों को ग्राहक-

कोष्ठ ( Auricles ) और नीचे की मंज़िलों को क्षेपक-कोष्ठ ( Ventricles ) कहते हैं।

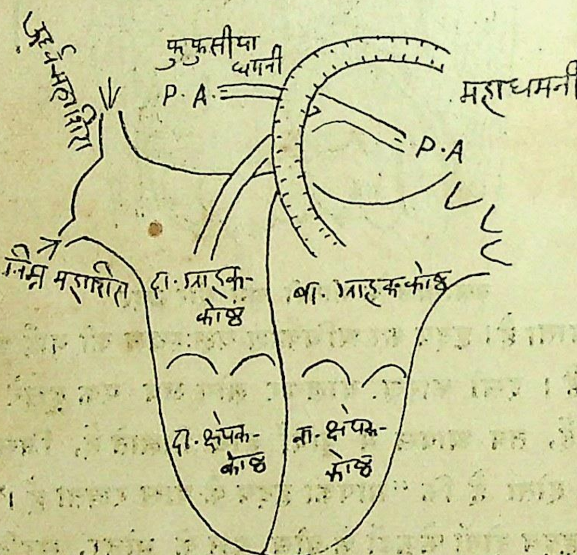
इस प्रकार हृदय में ४ कोठरियाँ हैं—

( १ ) दाहना ग्राहक-कोष्ठ

( २ ) दाहना क्षेपक-कोष्ठ

( ३ ) बायाँ ग्राहक-कोष्ठ

( ४ ) बायाँ क्षेपक-कोष्ठ




हृदय का कल्पित चित्र

हृदय के दाहने ग्राहक-कोष्ठ में दो रक्त-वाहक नलियाँ लगी हुई हैं। ये दोनों महाशिराएँ हैं। ऊपरवाली ऊर्ध्व महाशिरा ( Upper or Superior Vana Cava ) और

नीचेवाली निम्न महाशिरा ( Lower or Inferior Vana Cava ) कहलाती है। ऊर्ध्व महाशिरा अशुद्ध रक्त को सिर, ऊर्ध्व शाखाओं और वक्ष से दाहने ग्राहक-कोष्ठ में ले आती है; और निम्न महाशिरा शरीर के शेष निम्न भागों से अशुद्ध एवं विकारी रक्त को उक्त ग्राहक-कोष्ठ में ला उँडेलती है। इस प्रकार विकारी अशुद्ध रक्त से परिपूर्ण हो जाने पर दाहने ग्राहक-कोष्ठ की दीवालें संकुचित होती हैं; और चूँकि महाशिराओं के कपाट बंद हो जाते हैं, अतः रक्त दाहने ग्राहक-कोष्ठ से दाहने क्षेपक-कोष्ठ में भरता है। इस दाहने क्षेपक-कोष्ठ से एक नली निकलती है, जिसकी आगे चलकर दो शाखाएँ हो जाती हैं। इनमें से एक दाहने और दूसरी बाएँ फेफड़े को जाती है। इन्हें फुप्फुसीय धमनियाँ ( Pulmonary Arteries ) कहते हैं। इन फुप्फुसीय धमनियों द्वारा अशुद्ध रक्त फेफड़े में पहुँचता है, जहाँ वह फुप्फुसों में आई हुई ऑक्सिजन ( Oxygen ) से मिलकर फिर शुद्ध होता है, और तत्पश्चात् चार नलियों द्वारा हृदय के बाएँ ग्राहक-कोष्ठ को लौट पड़ता है। इन लानेवाली नलियों में से दो दाहने और दो बाएँ फुप्फुस से आती हैं। इन्हें फुप्फुसीय शिराएँ ( Viens ) कहते हैं।

स्मरण रहे, शुद्ध रक्त-वाहक नलियों को धमनियाँ और अशुद्ध रक्त-वाहक नलियों को शिराएँ कहते हैं। किंतु फुप्फुसीय धमनियाँ ही केवल अशुद्ध रक्त को हृदय से

फुप्फुसा में ले जाती हैं। वास्तव में शरीर के भिन्न-भिन्न देशों से हृदय की ओर रक्त को ले आनेवाली नलियों को शिराएँ ( Arteries ) और हृदय से शरीर के भिन्न-भिन्न देशों और भागों की ओर रक्त को ले जानेवाली नलियों को धमनियाँ कहते हैं।

हृदय का जब बायाँ ग्राहक-कोष्ठ शुद्ध रक्त से परिपूर्ण हो जाता है, तब उसकी दीवालों की मांस-पेशियाँ सिकुड़ती हैं, और रक्त नीचे की ओर बाएँ क्षेपक-कोष्ठ में प्रवेश करता है। इस बाएँ क्षेपक-कोष्ठ के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है, जिसे महाधमनी कहते हैं। फुप्फुसीय धमनियों को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं, वे सब इसी महाधमनी से निकलती हैं।

इस प्रकार शुद्ध रक्त हृदय से महाधमनी द्वारा निकलकर, उसकी शाखाओं और केशिकाओं ( Capillaries ) में भ्रमण करता हुआ शरीर के सब अंगों और भागों को आवश्यक पदार्थ देकर, फिर दो महाशिराओं द्वारा दाहने ग्राहक-कोष्ठ में, शरीर की अशुद्धियाँ लेकर, स्वयं अशुद्ध होकर लौटता है।

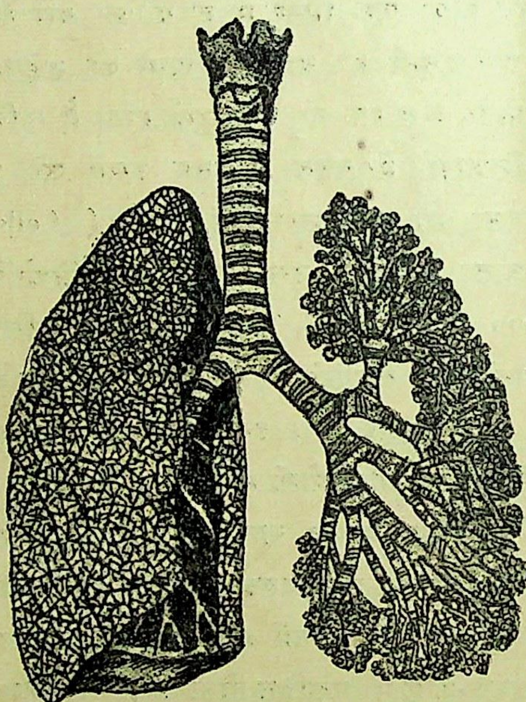
हृदय के ऊपरी दो कमरे, दाहने और बाएँ ग्राहक-कोष्ठ, एक साथ संकुचित तथा विस्तृत होते रहते हैं, और निम्न दो क्षेपक-कोष्ठ एक साथ। अर्थात् जब ऊपर के दोनों ग्राहक-कोष्ठ संकुचित होते रहते हैं, उस समय नीचे के

दोनों क्षेपक-कोष्ठ एक साथ विस्तृत होते रहते हैं, और जब नीचे के दोनों क्षेपक-कोष्ठ एक साथ संकुचित होते उस समय ऊपर के दोनों ग्राहक-कोष्ठ एक साथ विस्तृत हो जाते हैं। इन्हीं ग्राहक और क्षेपक-कोष्ठों के विस्तृत एवं संकुचित होने के कारण हृदय में हर समय धड़कन होती है। प्रायः एक मिनट में हृदय ७२ बार रक्त ग्रहण करता और इतनी ही बार उसे आगे को ढकेलता है।

धमनीय शुद्ध रक्त का रंग सुर्ख़ होता है। किंतु जब वह केशिकाओं में बहता है, तब उसमें जो ऑक्सिजन रहता है, वह शरीर के सेलों ( Cells ) में पहुँच जाता है, और उस रक्त में कार्बनद्विओषित गैस ( Carbon dioxide gas ) या कार्बानिक एसिड गैस मिल जाती है। इसलिये इन केशिकाओं के रक्त का रंग स्याही लिए रहता है। इन केशिकाओं के आपस में जुटने से रक्त को मोटी-मोटी नलियाँ बन जाती हैं। जिनमें वही दूषित स्याही-मायल रक्त हृदय की ओर बहता है। ये रक्त की नलियाँ आगे बढ़कर हृदय के पास दो महाशिराएँ बन जाती हैं, जिनमें होकर वह अशुद्ध रक्त फिर दाहने ग्राहक-कोष्ठ में एकत्रित होता है। इस प्रकार हृदय से चला हुआ शुद्ध रक्त शरीर की रग-रग में भ्रमण करता हुआ, अधिकांश ख़र्च होकर और शेष शरीर की अशुद्धियों को लेता हुआ, फिर हृदय में प्रवेश करता है। रक्त की

इस गति को रक्त-परिभ्रमण ( Blood Circulation ) कहते हैं।

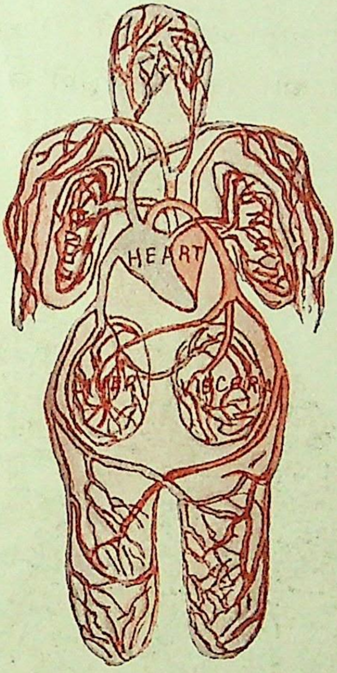
**फुप्फुस या फेफड़े**—ये दो होते हैं, और हृदय के दाहनी और बाईं ओर रहते हैं। ये हृदय, अन्न-प्रणाली ( Gullet ) और रक्त की नलियों से घिरे हुए स्थान



फुप्फुस

को छोड़ बाक़ी वक्ष के गह्वर को भरे हुए हैं। ये वायु-वाहक और रक्त-वाहक छोटी-छोटी और पतली

# तात्कालिक चिकित्सा




रक्त-परिभ्रमण

नलियों से बुने हुए जाल से बने हुए हैं, जिन पर एक पतला सौत्रिक तंतु से निर्मित वेष्ठ चढ़ा हुआ है। नथुनों से लेकर फुप्फुस तक जो वायु-मार्ग है, उसे श्वास-मार्ग ( Wind Pipe or Trachea ) कहते हैं। आगे चलकर इस श्वास-मार्ग की दो शाखाएँ हो जाती हैं। एक दाहने फुप्फुस की ओर जाती है, और दूसरी बाएँ फुप्फुस की ओर। फुप्फुसों में पहुँचकर इन नलियों की अनेक सूक्ष्म शाखाएँ हो जाती हैं, जो फुप्फुसों के प्रत्येक भाग में व्याप्त हैं। इस प्रकार साँस ली हुई वायु समस्त फुप्फुसों में पहुँचती है, और उनमें भ्रमण करके, फिर श्वास-मार्ग से बाहर आती है। गहरी साँस लेने पर ही वायु फुप्फुसों के सब भागों में दौड़ सकती है, अतः प्रत्येक प्राणी को गहरी साँस लेनी चाहिए। दिन में और विशेषकर प्रातःकाल कोई समय निर्द्धारित कर रक्खे, जब ८-१० मिनट तक निश्चिंत बैठकर गहरी साँस लेना चाहिए, ताकि फेफड़ों के अंदर की कलुषित वायु निकल जाय, और उनमें आए हुए अशुद्ध रक्त की शुद्धि पूर्णरूप से हो जाय। सबसे बड़ी बात इस अभ्यास से यह होगी कि फेफड़े कमज़ोर न पड़ने पावेंगे। आजकल प्रायः नवयुवकों के फेफड़े कमज़ोर और रोगी हो जाया करते हैं। राजयक्ष्मा के रोगियों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। यह एक भयंकर रोग है, इसके शिकार बहुत कम बचते हैं। इस रोग की वृद्धि

के कारण आजकल के नवयुवकों की अस्वस्थ अवस्था, व्यायाम से उदासीनता और फेफड़ों को निर्बल बनानेवाले पदार्थों का सेवन इत्यादि हैं। नवयुवकों को चाहिए कि थोड़ा बहुत व्यायाम नित्य अवश्य करें, और कुछ समय स्वच्छ वायु में अवश्य टहलें। टहलते समय गहरी साँस अवश्य लें। साँस सोते और जागते, हर समय नाक से लेनी चाहिए। नाक के अंदर किसी रोग के हो जाने, डॉक्टर के मना करने अथवा नाक के अंदर से रक्त निकलने के समय को छोड़कर प्रायः सदा नाक से ही साँस लेना हितकर है। कारण, नाक साँस ही लेने के लिये बनाई गई है। नथुनों के द्वार पर बहुत-से बाल होते हैं, जो अंदर प्रवेश करती हुई वायु पर ब्रश का काम करते हैं। वे वायु के धूल के कण आदि को भीतर फेफड़ों तक पहुँचने से रोक रखते हैं। आगे बढ़ने पर नाक के अंदर एक ऐसा तरल एवं लसीला पदार्थ है, जिसे बलग़म ( Mucus ) कहते हैं। यह पदार्थ अंदर आनेवाली वायु में मिले हुए सूक्ष्म धूल के कण तथा कीटाणुओं को फेफड़ों तक पहुँचने के पहले रोक लेता है। इससे आप समझ सकते हैं कि नाक द्वारा साँस लेकर आप अपने फेफड़ों को कितना स्वच्छ एवं नीरोग रख सकते हैं। गहरी साँस लेते समय साँस को मुँह से बाहर निकालना चाहिए; किंतु और समय में मुँह से साँस लेने का काम न लेना

चाहिए। साधारणतः मनुष्य को एक मिनट में १६ से २० बार साँस लेनी चाहिए।

हमारे शरीर में सेलों के टूटने-फूटने और भाँति-भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होने से कार्बन-द्विओषित ज़हरीली गैस बनती रहती है। जिस रक्त में यह रहती है, उसका रंग स्याही-मायल होता है। यही अशुद्ध, ज़हरीला रक्त हृदय के दाहने भाग से फुप्फुसीय धमनियों द्वारा फुप्फुसों तक पहुँचता है, और वहाँ पहुँचकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रक्त-केशिकाओं में बँट जाता है, जो फुप्फुसों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वायु-नलियों और वायु-कोष्ठों को घेरे रहती हैं। यहाँ वायु-कोष्ठों की ऑक्सिजन वायु-कोष्ठों की दीवालों से निकलकर, रक्त-वाहक केशिकाओं की दीवालों को पारकर, उनके रक्त में प्रवेश कर जाती है, और रक्त की कार्बन-द्विओषित रक्त से निकलकर वायु-कोष्ठों में पहुँच जाती है। इस प्रथा को विज्ञान में आसमोसिस ( Osmsis) कहते हैं। इस प्रकार फुप्फुसों में भली भाँति भ्रमण करने के बाद अशुद्ध स्याही-मायल रक्त फिर ऑक्सिजन प्राप्त करके शुद्ध एवं सुर्ख होकर फुप्फुसीय शिराओं द्वारा हृदय में लौटता है, और वायु-कोष्ठों की वायु, ऑक्सिजन को देकर तथा कार्बन-द्विओषित को लेकर, अशुद्ध बन जाती और बहिश्र्वास द्वारा बाहर आती है। इस वायु में रक्त से कुछ जल की भाप और कुछ उड़नशील विषैले पदार्थ भी

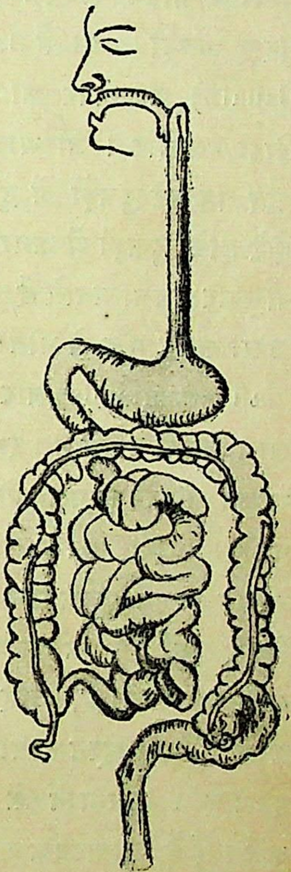
बाहर निकलते रहते हैं। अतः रक्त की शुद्धि के लिये सदा गहरी साँस लेनी चाहिए। साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि जिस वायु में हम साँस लेते हों, वह ऑक्सिजन से परिपूर्ण तथा रोग के कीटाणुओं से सुरक्षित हो।

# तीसरा व्याख्यान

## धड़ का उदर-गह्वर ( Abdomen )

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, इस उदर-गह्वर में शरीर के पोषक यंत्र आमाशय, छोटी-बड़ी अँतड़ियाँ, यकृत, प्लीहा, वृक्क और मूत्राशय हैं।

जो कुछ हम खाते-पीते हैं, वह सब एक नली द्वारा, जिसे अन्न-प्रणाली कहते हैं, नीचे उतरता है। यह अन्न-प्रणाली श्वास-प्रणाली के पीछे होती है। अन्न-प्रणाली वक्ष में होती हुई उदर में उतरती है, जहाँ वह एक थैली में, जिसे आमाशय या पाक-स्थली कहते हैं, खुलती है। इस पाक-स्थली में खाए हुए दृढ़ और द्रव, दोनों प्रकार के पदार्थ इकट्ठे होते हैं। आमाशय से अंत्र या अँतड़ियों का आरंभ होता है।



अन्न-प्रणाली

अँतड़ियाँ उदर में गेंडुली मारे हुए पड़ी रहती हैं। उदर का अधिकांश इन्हीं से घिरा हुआ रहता है। छोटी अँतड़ी की लंबाई प्रायः २६ या २७ फ़ीट होती है। इसी से जुड़ी हुई प्रायः ५ फ़ीट लंबी एक दूसरी अँतड़ी है, जिसे बड़ी या बृहत् अँतड़ी कहते हैं। इस अन्न-मार्ग ( Alimentary Canal ) का ऊपर का सिरा मुख है, और नीचे का सिरा मल-द्वार। जो भोजन हम मुँह में रखते हैं, उसे—यदि वह बड़े टुकड़ों में हुआ—काटनेवाले सामने के दाँत छोटे-छोटे टुकड़ों में कतरते हैं। फिर पीसनेवाले दाँत उसे पीसकर पतला बनाते हैं। जब यह क्रिया होती रहती है, उसी समय मुँह के भीतर रहनेवाली लार की ६ ग्रंथियाँ (Salivary glands) लार पसीजती जाती हैं, जो भोजन के साथ सनती रहती है। इस लार से दो लाभ हैं। एक तो भोजन सनकर निगलने-योग्य बन जाता है, और दूसरे उस पर लार द्वारा एक रासायनिक क्रिया होती है, जिससे भोजन शीघ्रता-पूर्वक पच जाता है। वास्तव में भोजन पचाने के लिये कई रसों की आवश्यकता पड़ती है। जिन अंगों से ये रस आते हैं, उन्हें पाचक ग्रंथियाँ कहते हैं। कुछ ग्रंथियाँ अति सूक्ष्म होती हैं। ये अन्न-मार्ग की दीवालों में होती हैं। अन्न-मार्ग के बाहर उदर में ऐसी दो बड़ी ग्रंथियाँ हैं, जो पाचक रस बनाती हैं। उनमें से एक यकृत या जिगर (Liver) और दूसरी क्लोम (Pancreas) है। इन

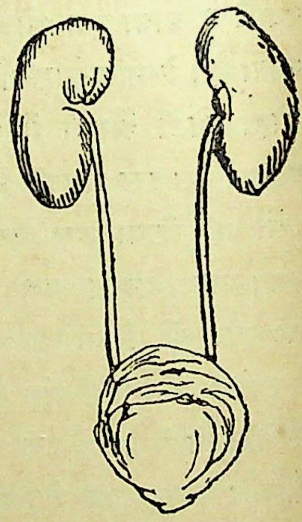
ग्रंथियों से रस नलियों द्वारा छोटी अँतड़ी में पहुँचता है। ६ ग्रंथियाँ मुँह में हैं, जिनमें लार ( Saliva ) बनती है। जो भोजन मुख में भली भाँति चबाया जाता है, उसमें लार अच्छी तरह मिलकर उसे घुलनशील बना देती है, अर्थात् यह भोजन के श्वेतसार ( Starch ) को शक्कर (Sugar) में बदल देती है। आमाशय अथवा पाक-स्थली का अधिकांश भाग उदर में बाईं ओर को झुका होता है। इस पाक-स्थली में भी भोजन के पाचक रस उसकी दीवालों की ग्रंथियों से निकल-निकलकर मिलते रहते हैं। पाक-स्थली की दीवालों की मांस-पेशियाँ इस प्रकार सिकुड़ती रहती हैं कि पाक-स्थली में आया हुआ भोजन उक्त रसों से भली भाँति सन जाता है। ये मांस-पेशियाँ भोजन को दबा-दबाकर थोड़ा-थोड़ा छोटी अँतड़ी में भी भेजती रहती हैं। जैसे-जैसे आहार-रस इस अँतड़ी में नीचे उतरता रहता है, पाचक रसों की क्रिया उस पर होती रहती है। इस प्रकार पचने-योग्य पदार्थ पच जाते हैं, और छोटी अँतड़ियों की दीवालों से छनकर रक्त या लिंफ में पहुँच जाते हैं। छोटी अँतड़ी के अंत तक पहुँचने के पहले आहार-रस में से बहुत-से पदार्थ रक्त और लिंफ में सम्मिलित हो जाते हैं, और आहार का शेष भाग बड़ी अँतड़ी में प्रवेश करता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ी अँतड़ी में नीचे को उतरता है, उसमें से जल का परिमाण कम होता जाता है। अतः वह

गाढ़ा होता जाता है, और अंत में उसमें कृमि ( Bacterias ) उत्पन्न हो जाते हैं, जो उसे सड़ाकर धीरे-धीरे मलाशय में भेज देते हैं।

**यकृत**—यह शरीर में सबसे बड़ी ग्रंथि है, और उदर के ऊपरी भाग में, दाहनी ओर वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी ( Diaphram ) के नीचे, पसलियों की आड़ में रहती है। यकृत में जो पाचक रस बनता है, उसे पित्त ( Bile ) कहते हैं। जब भोजन पचाने के लिये पित्त की आवश्यकता नहीं रहती, तब वह पित्ताशय में एकत्र होता रहता है।

**प्लीहा**—यह आमाशय के नीचे उदर में बाईं तरफ़ होती है।

**वृक्क**—ये दो ग्रंथियाँ हैं। इनका कार्य रक्त को शुद्ध करना है। ये रक्त से ज़हरीला तरल पदार्थ ले लेती हैं। यही तरल पदार्थ मूत्र (Urin) है। ये वृक्क अँतड़ियों के पीछे होती हैं। रक्त से जो वृक्क द्वारा मूत्र निकाला जाता है, वह एक थैले में, जिसे मूत्राशय कहते हैं, इकट्ठा होता रहता है। यह मूत्राशय उदर के पेड़ू-प्रदेश में होता है।



वृक्क

पाक-कर्म---मुख में दाँत एक मिल के सदृश हैं, जो आए हुए आहार को काट-पीसकर बिलकुल पिसे हुए आटे के सदृश कर देते हैं। साथ-ही-साथ मुख के अंदर की ग्रंथियों से निकलकर लार उससे सनती रहती है, जिससे आहार गीला, नर्म, घुलनशील एवं निगलने-योग्य बनता है। अब यहाँ से आहार अन्न-प्रणाली में होता हुआ आमाशय में पहुँचता है। आमाशय में भोजन ख़ूब मथा जाता है। और, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, इस क्रिया के अंतर्गत, आमाशय की दीवालों की ग्रंथियों से निकलकर, एक पाचक रस आहार को और भी अधिक घुलनशील बना देता है। इस मथे हुए अन्न-जल को आहार-रस कहते है। यह आहार-रस फिर धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, छोटी अँतड़ी में उतरता है। यहाँ पित्त, क्षुद्रांत्रीय रस और क्लोम-रस उसमें आकर मिलते हैं, और अपनी पाचन-क्रिया प्रारंभ करते हैं। इस पक्वीकरण के पूर्ण होते ही आहार-रस में से आवश्यक रस रक्त और लसीका में पहुँचता है। आहार-रस के जल का आत्मीकरण अधिकतर बड़ी अँतड़ी में होता है, और आहार का शेष भाग गाढ़ा होकर विष्ठा बन जाता है, तथा नियत समय पर, मल-द्वार द्वारा, बहिष्कृत किया जाता है।

इस प्रकार भोजन आत्मरक्षा का प्रथम और अंतिम

साधन है। अच्छा और शीघ्र पचनेवाला पौष्टिक भोजन ठीक समय पर खूब चबा-चबाकर करना चाहिए। स्वच्छ स्थान में बैठकर स्वच्छ पात्रों में और स्वच्छ हाथों से तैयार किया हुआ भोजन, प्रसन्न-चित्त होकर पाना चाहिए। भोजन को कभी खुला न छोड़ रखना चाहिए, ताकि उस पर मक्खियाँ न बैठें। सदा स्वच्छ, ताज़ा और गर्म ही भोजन खाना चाहिए। भोजन करने के घंटे-आधा घंटे बाद तक कोई मानसिक या शारीरिक परिश्रम भी न करना चाहिए। भोजन प्रिय और शीघ्र पचनेवाला होना चाहिए, और उसमें वे पदार्थ विद्यमान होने चाहिए, जो शरीर के लिये आवश्यक हैं; क्योंकि रक्त से शरीर के सेलों को वे पदार्थ मिलते हैं, जो उनके बढ़ने और काम करने के लिये आवश्यक हैं।

---

## चौथा व्याख्यान

### रक्त-संचालक रगों से रक्त का बाहर निकलना ( Haemorrhage ) और उसका उपचार

पिछले तीन व्याख्यानों से ज्ञात हुआ होगा कि मनुष्य-शरीर की रचना कैसी जटिल है। अतएव इस शरीर की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए ? हम प्रायः देखते हैं कि चोट आदि अथवा अस्त्र-शस्त्र द्वारा घाव लग जाने पर शरीर से रक्त की धारा बह निकलती है, और थोड़ी ही देर में मनुष्य का शरीर शिथिल होने लगता है। यदि रक्त का बहाव वेग से रहा, और उसका बाहर निकलना न रुक सका, तो वह प्राणी मानों काल के चंगुल में फस गया। कारण, रक्त ही मनुष्य-जीवन की नदी है। इस नदी की शाखाएँ हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में फैली हुई हैं, जो उन स्थानों को आवश्यक पदार्थ पहुँचाया करती और वहाँ से अनावश्यक पदार्थों को हटाया करती हैं। इस प्रकार हमारे शरीर में रक्त-संचालन करनेवाली रगों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। ये रक्त की रगें तीन प्रकार की हैं—धमनियाँ, शिराएँ और केशिकाएँ। हृदय से रक्त धमनियों द्वारा सारे शरीर में संचार करता है, और शिराओं द्वारा वह शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से लौटकर हृदय

में आता है। धमनियों और शिराओं को जोड़नेवाली बाल-जैसी पतली जो रक्त-नलियाँ हैं, उन्हें केशिकाएँ कहते हैं। केशिकाएँ त्वचा के समीप भी हैं, इसलिये त्वचा (Skin) के ज़रा-सा छिल जाने पर भी इन केशिकाओं से रक्त नन्हीं-नन्हीं बूँदों में निकलने लगता है। धमनियाँ और शिराएँ प्रायः शरीर में भीतर की ओर होती हैं, इसलिये गहरी चोट लगने या घाव होने ही से उनमें से रक्त निकलता है। इस प्रकार शरीर से तीन प्रकार की रक्त-क्षति होती है—(१)धमनियों से जो रक्त बाहर निकलता है, उसे धमनीय रक्त-क्षति (Arterial Haemorrhage) (२) शिराओं से जो रक्त-क्षति होती है, उसे शिरा-संबंधी रक्त-क्षति (Venous Haemorrhage) (३) और केशिकाओं से जो रक्त बाहर निकलता है, उसे केशिकीय रक्त-क्षति (Capillary Haemorrhage) कहते हैं। धमनीय तथा शिरा-संबंधी रक्त-क्षति की अपेक्षा केशिकाओं से प्रायः अधिक रक्त-क्षति हुआ करती है।

भिन्न-भिन्न प्रकार की रक्त-क्षति को रोकने के लिये भिन्न-भिन्न तरीक़े हैं। जब किसी धमनी से रक्त बाहर निकलता है, तो वह अपने लाल रंग तथा उछल-उछलकर निकलने के ढंग से पहचाना जाता है। जब किसी शिरा से रक्त बाहर निकलता है, तो वह अपने सुर्खी-मायल रंग और लगातार एक ढंग से बहने से पहचाना जाता है। और, जब किसी

केशिका द्वारा रक्त बाहर निकलता है, तो उसका रंग भी लाल होता है; किंतु वह बहुत धीरे-धीरे, नन्हीं-नन्हीं बूँदों में, बाहर आता है। अतः रक्त-क्षति को रोकने के पहले इस बात की पहचान कर लेना आवश्यक है कि किस प्रकार की रक्त-क्षति हो रही है। तत्पश्चात् निम्न उपाय करने चाहिए—

(१) यदि धमनीय रक्त-क्षति हो रही हो, तो रक्त फेंकनेवाले अंग को ऊँचा करके रखना चाहिए, और, यदि शिरा से रक्त-प्रवाह हो रहा हो, तो उस अंग को नीचा करके। कारण, धमनीय रक्त-क्षति में रक्त हृदय की ओर से आता है। इसलिये यदि घायल अंग हृदय से ऊँचा करके रक्खा जायगा, तो रक्त को ऊपर चढ़ने में कठिनाई होगी। इसके प्रतिकूल शिरा-संबंधी रक्त-क्षति में रक्त हृदय की ओर जाता है, इसलिये घायल अंग को नीचा करके रखने में रक्त को ऊपर चढ़ने में वही कठिनाई अनुभव होती है।

(२) ठंढा जल अथवा वर्फ़ रक्त निकलनेवाली नली के कटे हुए सिरे पर रखना चाहिए। इससे वह नली सिकुड़कर सँकरी हो जाती है, और फलतः रक्त पहले की अपेक्षा बहुत थोड़ा-थोड़ा बाहर निकलता है।

(३) घाव पर पट्टी बाँधने और घाव के समीप उपयुक्त स्थान पर, रक्त निकलनेवाली रग पर, दबाव डालने से

रक्त का बहना रुक जाता है। इस प्रकार का दबाव कई प्रकार से डाला जाता है। जैसे, अँगूठों, पट्टियों इत्यादि से।

धमनियों तथा शिराओं से रक्त-प्रवाह को रोकने के लिये इस बात का ज्ञान लेना आवश्यक है कि उक्त रक्त-वाहक रगों पर कहाँ और घाव के किस ओर दबाव डाला जाय। धमनियाँ और शिराएँ प्रायः मांस के अंदर होती हैं, इसलिये उनका हर जगह पता लगाना और उन पर दबाव डालना कठिन है। जहाँ पर वे शरीर के ऊपरी भाग में आ जाती हैं, और जहाँ पर उनके ठीक नीचे या बग़ल में कोई हड्डी होती है, वहाँ उन पर भली भाँति दबाव डाला जा सकता है। शरीर में ऐसे स्थानों को **दबाव के स्थान** ( Pressure Points ) कहते हैं। इसलिये इन दबाव के स्थानों का ज्ञान रखना परम आवश्यक है। मनुष्य-शरीर में रक्त-वाहक नलियों पर ये दबाव के स्थान रहते हैं। स्मरण रहे, जो रक्त धमनियों में बहता है, वह हृदय की ओर से शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की ओर बहता है, और जो रक्त शिराओं में बहता है, वह अंगों से हृदय की ओर। अतः धमनीय रक्त-क्षति को रोकने के लिये, हृदय और क्षति के स्थान के बीच, क्षति के समीप के दबाव-स्थान पर दबाव डालना चाहिए। शिराओं से रक्त-क्षति को रोकने के लिये, घाव के दूसरी

ओर, हृदय से दूर या घाव के समीप के स्थान पर दबाव डालना चाहिए। यदि समीप ही कोई दबाव-स्थान न हो, तो घाव पर ही पट्टी बाँध देनी चाहिए; और यदि रक्त-क्षति भयंकर हो, तो टुर्निकट ( Tourniquet ) द्वारा उक्त नली पर दबाव डालना चाहिए।

**शरीर में दबाव के स्थान**—साधारणतः हड्डी के ऊपर जहाँ नाड़ी की गति मालूम हो, वहीं ये दबाव के स्थान उस स्थान की धमनी के लिये होते हैं। ( चित्र नं० १ में ध्यान से देखिए)। जैसे, कानों के सम्मुख, दो अंगुल कानों के पीछे, निम्न हनु की दाईं और बाईं ओर, गर्दन के ऊपरी भाग में, हँसली की हड्डी के ऊपर मध्यभाग के गड्ढों में, ऊर्ध्वबाहु के कोष्ठों ( Arm Pits ) में और उनके मध्य में, कुहनियों के अंदर, कलाइयों में अँगूठा और छिगनी की ओर, पुट्ठे के नीचे, जाँघ के मध्य और भीतरी भाग में, टिहुनी के जोड़ के भीतरी भाग में और नड़हरों ( Ankles ) के ऊपरी और भीतरी प्रदेश में।

## धमनीय रक्त-क्षति का रोकना

( १ ) जब तक गद्दी या बंधन तैयार किए जायँ, अँगूठों और उँगलियों द्वारा उपयुक्त दबाव-स्थान पर दबाव डाले रहना चाहिए।

( २ ) रक्त-क्षति के स्थान पर पट्टी रखकर, उसे कस-कर बाँध देना चाहिए।

( ३ ) यदि इससे सफलता प्राप्त न हो, तो रक्त-क्षति-स्थान के ऊपर के जोड़ में एक गद्दी रखकर, जोड़ को मोड़कर बाँध दे।

( ४ ) यदि ये सब उपाय असफल होते देख पड़ें, तो घाव से हटकर, उपयुक्त दबाव के स्थान पर टुर्निकेट कसकर बाँध दे।

## शिराओं से रक्त-क्षति का रोकना

( १ ) रक्त-क्षति के पास उपयुक्त दबाव के स्थान पर अँगूठों से दबाव डाले।

( २ ) एक साफ़ कपड़े की गद्दी ठंढे जल में भिगोकर, घाव पर रखकर अच्छी तरह बाँध दे।

( ३ ) यदि इस पर भी रक्त-क्षति न रुकती हो, तो एक दूसरी पतली पट्टी हृदय से दूर, घाव के दूसरी ओर, कसकर बाँध दे।

( ४ ) घायल अंग को नीचा करके रक्खे।

## केशिकाओं से रक्त-क्षति को रोकने के उपाय

( १ ) घाव पर साफ़ उँगलियों या ठीकरे से दबाव डाले।

( २ ) घाव को साफ़ करके, उसके ऊपर एक हलकी पट्टी बाँध दे।

## नासिका से रक्त-क्षति का रोकना

( १ ) स्वच्छ वायु के रुख़ में मरीज़ को एक कुरसी पर,

यदि वहाँ हो, बिठला दे, और उसके सिर को पीछे की ओर लटका दे।

(२) बाहुओं को सिर के ऊपर सीधा उठावे, और उन्हें किसी दूसरे को पकड़ा दे।

(३) गले और वक्ष पर के सब कसे कपड़ों को ढीला कर दे।

(४) नाक और गर्दन के ऊपर बर्फ़ या ठंढा जल रक्खे।

(५) मरीज़ से कहे कि वह मुँह को खुला रक्खे, और उसी से साँस ले।

(६) मरीज़ के पैरों को गर्म पानी में रक्खे, ताकि रक्त सिर की ओर जाने की अपेक्षा पैरों की ओर अधिक दौड़े।

## पट्टी बाँधना ( Bandaging )

पहले तिकोनी पट्टी बाँधना प्रत्येक तात्कालिक चिकित्सक को जानना चाहिए। उक्त पट्टी का सबसे अधिक लंबा किनारा पट्टी का आधार, दो बग़ल के किनारे आधार की भुजाएँ तथा आधार के सम्मुख के सिरे को पट्टी का शीर्ष कहते हैं। इस तिकोनी पट्टी को तीन प्रकार से काम में लाते हैं—

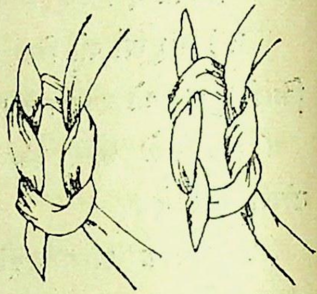
(१) पूरी पट्टी को बिना मोड़े हुए

( २ ) चौड़ी तहवाली पट्टी

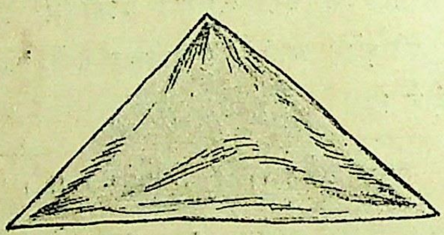
( ३ ) सँकरी तहवाली पट्टी

**चौड़ी तहवाली पट्टी—** शीर्ष को आधार के मध्य तक लाकर, पट्टी को बीच से दूसरी ओर को मोड़ देते हैं।

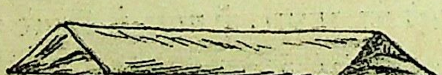
**सँकरी तहवाली पट्टी—** यह चौड़ी तहवाली पट्टी को बीच से एक बार और मोड़ने से बनती है। पट्टियों के सिरे रीफ़ गाँठ द्वारा बाँधने चाहिए, ग्रेनी द्वारा नहीं।



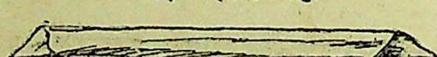
१. रीफ़ गाँठ २. ग्रेनी गाँठ



पूरी पट्टी

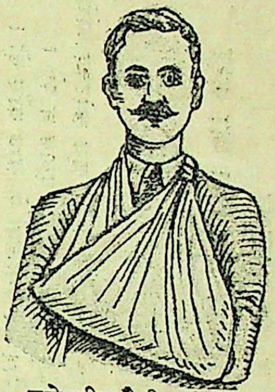


चौड़ी तहवाली पट्टी



सँकरी पट्टी

**गले की चौड़ी झोल**— घायल के सामने खड़े हो जाओ, और खुली तिकोनी पट्टी के एक छोर को अच्छे कंधे पर रक्खो। तत्पश्चात् अग्रबाहु को इस प्रकार मोड़ लो कि वह कुहनी से ऊपर उठा रहे। फिर उसका दूसरा सिरा घायल अंग के कंधे पर ले जाकर पहले सिरे से बाँध दो।



गले की चौड़ी झोल

बाद को पट्टी के शीर्ष को कुहनी के ऊपर से मोड़कर आलपीन या सुई से अँटका दो, ताकि गिर न सके।

**गले की सँकरी झोल**— तिकोनी पट्टी की चौड़ी तह कर लो, और तब एक सिरे को अच्छे कंधे (जिसमें चोट नहीं है) पर रक्खो, और उसे गर्दन के ऊपर से घुमाकर घायल अंग की ओर के कंधे पर लाओ। दूसरे सिरे को समकोण पर मुड़ी हुई अग्रबाहु की कलाई और हाथ



गले की सँकरी झोल

पर, पट्टी को मोड़ते हुए, घायल अंग के कंधे पर लाओ, और सामने की ओर पहले सिरे से गाँठ लगा दो।

## शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों से रक्तस्राव का रोकना

| नं० | (अ) घायल अंग | (ब) दबाव के स्थान (चित्र नं० १ देखिए) | (स) दबाव का रुख़ |
|---|---|---|---|
| १. | सिर के सामने या ऊपर | ठीक कान के सम्मुख | ठीक हड्डी के ऊपर |
| २. | सिर के पिछले भाग में | कान के दो अंगुल पीछे | ,, |
| ३. | गर्दन में | नीचे के जबड़े की हड्डी के नीचे | रीढ़ की हड्डी के साथ ख़ूब लपेटकर बाँधे, किंतु श्वास मार्ग पर दबाव न पड़े । |
| ४. | बग़ल में | हँसली के मध्य के ऊपरी गड्ढे में | ऊपर की पसलियों के साथ बाँध दो । |
| ५. | ऊर्ध्वबाहु में कुहनी के ऊपर | ऊर्ध्वबाहु के मध्य में और भीतरी ओर | बाहु की हड्डी पर |
| ६. | अग्रबाहु में | कुहनी के मोड़ में भीतरी तरफ़ | हड्डी पर नीचे को दबाकर |
| ७. | करतल में | आधा इंच कलाई के ऊपर दोनों तरफ़ | बाहु को ऊपर उठाओ, और हाथ की कलाई के सहारे पीछे मोड़ो । |
| ८. | जाँघ के ऊर्ध्वभाग में | पुट्ठे के नीचे | घुटने को मोड़ो, और जाँघ को आगे बढ़ाकर उसकी हड्डी पर दबाव डालो । |
| ९. | टाँग में | घुटने के जोड़ के गड्ढे में | हड्डी पर दबाकर |
| १०. | पैर में | (१) टख़नों के पीछे के गड्ढों में<br>(२) टख़नों के सामने ठीक बीच में | टाँग को ऊपर रक्खो, और हड्डी पर दबाओ, |

| दबाव डालने का ढंग | पट्टी बाँधने की विधि |
|---|---|
| १. अँगूठे द्वारा या उक्त धमनी पर एक पट्टी रखकर तिकोनी पट्टी बाँध दे। | सँकरी तहवाली पट्टी मोड़कर बाँधी जाय, ताकि खूब दबाव पड़े। |
| २. ,, | सँकरी पट्टी का मध्यभाग गद्दी पर हो, और पट्टी माथे के ऊपर से घुमाकर, गद्दी पर गाँठ दी जाय। |
| ३. उँगलियों द्वारा सिर को आगे झुकाओ, और तब एक पट्टी द्वारा उसे इस दशा में रक्खो। | स्वयं दबाव डालो या किसी सहायक द्वारा, जब तक डॉक्टर न आ जाय। |
| ४. पहले अँगूठों द्वारा और बाद को गद्दी रखकर पट्टी से बाँध दो। | गद्दी को बग़ल में रखकर, सँकरी पट्टी द्वारा, कंधे के ऊपर से बाँध दो, और उसकी गाँठ दूसरी बग़ल के नीचे दो, और बड़ी कंधे की झोल लगाओ। |
| ५. (१) घायल के पीछे खड़े हो, (२) बाहु को उँगलियों से दबाकर रक्खो, और (३) उसे आगे-पीछे घुमाते रहो। | उक्त धमनी पर गद्दी रखकर एक सँकरी पट्टी बाँध दो, और बाहु को एक बड़ी कंधे की झोल में डाल दो। |
| ६. कुहनी के गड्ढे में गद्दी रक्खो, और ऊर्ध्वबाहु के साथ बाँध दो। | एक सँकरी पट्टी अग्रबाहु में, कलाई के पास लपेटकर, फिर उसके सिरों को ऊर्ध्वबाहु से और फिर अग्रबाहु में लपेटकर, कलाई पर गाँठ दे दो। |
| ७. पहले अँगूठों द्वारा और फिर गद्दी रखकर पट्टी बाँध दो। | एक मोटी गोल पट्टी हथेली पर रखकर, उँगलियों को मोड़कर दबाओ, और ऊपर से कसकर पट्टी बाँधो। |

| दबाव डालने का ढंग | पट्टी बाँधने की विधि |
| --- | --- |
| ८. अँगूठों को एक दूसरे पर रखकर दबाओ। | पट्टी न बाँधना चाहिए; किंतु दबाव बराबर डाले रखना चाहिए, जब तक डॉक्टर न आ जाय। |
| ९. दोनों अँगूठों द्वारा एक दूसरे पर रक्खो, और तब टुर्निकेट लगाओ। | टाँग को मोड़कर जाँघ के साथ बाँध दो। |
| १०. प्रत्येक दबाव-स्थान पर गद्दी रक्खो, और पट्टी बाँध दो। | पैर के तलवे में सँकरी पट्टी का मध्य-भाग रक्खो, उसे गद्दियों पर मोड़ो, और टख़नों पर कसकर लपेटो; फिर गद्दियों पर बाँध दो। |

सूचना—पृष्ठ ४०, ४१ और ४२ एक साथ मिलाकर पढ़े जायँ।

# पाँचवाँ व्याख्यान

## हड्डियों का टूटना

## ( Fractures )

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, मनुष्य का अस्थि-पंजर २४६ भिन्न-भिन्न हड्डियों से मिलकर बना है। ये हड्डियाँ बचपन में मुलायम तथा लचीली रहती हैं ; किंतु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, ये प्रौढ़ एवं दृढ़ होती जाती हैं। इसीलिये बचपन में चोट इत्यादि लगने से प्रायः हड्डियाँ टूटती नहीं, बल्कि लच जाती हैं। वृद्धावस्था में, इसके विपरीत, थोड़ी-सी चोट हड्डियों के तोड़ने के लिये काफ़ी होती है। कारण, बाल्यावस्था में हड्डियों में किंचित् या विशेषांश में अधातु-तत्त्व (Animal Matter) होता है, जिसके कारण हड्डियाँ लचीली रहती हैं। किंतु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, मनुष्य को बाहरी पदार्थों से धातु-तत्त्व ( Mineral Matter ) मिलते जाते हैं, जिससे उसकी अस्थियों में धातु-तत्त्व अधिक हो जाते हैं। फलतः अस्थियाँ सख़्त और कड़ी हो जाती हैं। यदि हम किसी हड्डी के टुकड़े को आग में जलावें, तो उसका अधातु-तत्त्व तो जल जायगा, और बाक़ी धातु-तत्त्व बच रहेगा। अब यदि हम उस टुकड़े को लचावें, तो वह फ़ौरन टूट जायगा।

इसके विपरीत यदि हम एक हड्डी के टुकड़े को अम्ल ( Hydrochloric Acid ) में रक्खें, तो उसका धातु-तत्त्व अम्ल द्वारा घुलकर निकल आवेगा, और हड्डी का शेष भाग बहुछिद्र-धारी अधातु-तत्त्व का बना रह जायगा। अब यदि आप इसे लचावें, तो यह प्रायः रबर की भाँति इच्छा-नुसार अनेक दिशाओं में मोड़ा जा सकता है, यहाँ तक कि उसके दोनों सिरों को मोड़कर रस्सी को भाँति गाँठ दी जा सकती है। इससे ज्ञान पड़ता है कि अवस्था पाकर हड्डियाँ सख़्त और टूटने लायक़ हो जाती हैं। इसलिये जब उन पर कभी अधिक भार पड़ता या धक्का लगता है, तो वे प्रायः टूट जाया करती हैं। घोड़े, साइकिल इत्यादि की सवारियों पर से गिरने या किसी ऊँचे स्थान से कूदने अथवा गिरने से ज़ियादातर हड्डियाँ टूटा करती हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, बचपन में हड्डियाँ लचीली रहती हैं; क्योंकि ये पूर्णरूप से ठोस नहीं हो पाती हैं। अतः बचपन में ये प्रायः कम टूटती हैं। अधिकतर ये ज़रा-सी चटखकर मुड़ जाती हैं। हड्डी के ऐसे चटखने को कच्चा टूटना ( Green Fracture ) कहते हैं।

हड्डियों की टूट दो प्रकार की होती है—

(१) साधारण ( Simple Fracture ) और (२) असाधारण ( Compound Fracture )

जब शरीर में किसी स्थान की हड्डी हो टूटी रहती

किंतु उसकी टूटी हुई नोक, मांस और चमड़े को फाड़कर बाहर नहीं निकली रहती है, तब ऐसी हड्डी के टूटने को साधारण टूटना कहते हैं। किंतु जब टूटी हुई हड्डियों के किनारे चमड़े को चींथकर बाहर निकल आते हैं, तब उसे असाधारण टूटना कहते हैं। प्रायः असावधानी ही के कारण साधारण हड्डी का टूटना असाधारण रूप धारण कर लेता है। अतः तात्कालिक चिकित्सकों को चाहिए कि वे ऐसे घायलों को छूने, उठाने या उनकी मरहम-पट्टी करने में बहुत ही अधिक सावधानी रक्खें; नहीं तो घायल को सुख पहुँचाने की जगह वे उसको दुःख पहुँचाने के कारण होंगे। कारण, जब तक टूटी हड्डी की नोकें चमड़े के भीतर रहती हैं, उनका जुड़ना बहुत आसान होता है। किंतु जब वे चमड़े को फाड़कर बाहर आ जाती हैं, तब जटिल समस्या हो जाती है। किनारों के बाहर निकल आने से घाव का संपर्क बाहर की वायु से हो जाता है। और, चूँकि वायु में नाना प्रकार के रोग-उत्पादक कीटाणु होते हैं, अतः घाव पक जाने और हड्डियों के सड़ने का डर हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि हड्डियाँ जुड़ भी जायँ, और घाव पूरा भी हो जाय, तो समय पहले की अपेक्षा बहुत ही अधिक लगेगा।

इन दो प्रकार से टूटने के अतिरिक्त हड्डियाँ और भी दो प्रकार से टूटती हैं—

(१) कभी-कभी हड्डियाँ कई जगह पर टुकड़े-टुकड़े हो

जाती हैं। जैसे, कोई भारी वस्तु के गिर जाने से। ऐसे टूटने को बहुखंडित टूटना ( Comminuted Fracture ) कहते हैं।

( २ ) कभी-कभी टूटी हुई हड्डी के किनारे किसी रक्त की बड़ी नली को फाड़ डालते हैं। ऐसे टूटने को मिश्रित टूटना ( Complicated Fracture ) कहते हैं।

टूटी हुई हड्डियों के चिह्न तथा पहचान

( १ ) उस स्थान में दर्द होता है, जहाँ की कोई हड्डी टूट जाती है।

( २ ) वह अंग, जहाँ की कोई हड्डी टूट जाती है, क़ाबू के बाहर हो जाता है, और व्यक्ति की इच्छानुसार कार्य नहीं करता।

( ३ ) उस अंग के आकार में भी परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् वह टेढ़ा, लंबा या छोटा पड़ जाता है।

( ४ ) उस स्थान पर, जहाँ कोई हड्डी टूटी होती है, सूजन आ जाती है। यह रक्त के एकत्रित होने तथा मांस-पेशियों के सिकुड़ने से होता है।

टूटी हड्डियों के उपचार में पटरियाँ ( Splints ) और पट्टियाँ काम में लाते हैं। ये पटरियाँ या अन्य कोई उपयुक्त वस्तुएँ इस प्रकार रखकर पट्टियों से बाँध दी जाती हैं कि टूटी हुई हड्डी के ऊपर और नीचे के जोड़ हिल-

डुल न सकें, और टूटी हुई हड्डी के सिरे मिले रहें, ताकि हड्डी अपनी पहले की जगह में रहे। तात्कालिक चिकित्सकों को लाठी, छाता, हिंदोस्तानी जूते और पुस्तकें इत्यादि समयानुसार, पटरियों के स्थान पर, काम में लाना चाहिए। इन वस्तुओं में से किसी एक को ठीक तौर से रखकर—ताकि घायल को कोई कष्ट न हो—रूमाल या अन्य कोई बाँधने-योग्य कपड़े से कई एक स्थानों पर बाँध देना चाहिए।

टूटी हड्डी के उपचार के लिये कुछ साधारण नियम

(१) निकट के किसी अनुभवी डॉक्टर को बुला भेजे।

(२) यदि रक्त निकल रहा हो, तो पहले उसे रोके; तत्पश्चात् पटरियाँ बाँधने का प्रबंध करे।

(३) जब तक भली भाँति मरहम-पट्टी न करा ले, घायल को बिलकुल न हिलावे-झुलावे।

(४) समयानुसार प्राप्त वस्तुओं से स्प्लिट की जगह काम लेकर आराम पहुँचावे।

(५) घायल को गरमी पहुँचाकर उसके दर्द को कम करे।

(६) यदि तुम्हारे ख़याल से रीढ़, चूतड़ या जाँघ की हड्डी टूट गई है, तो मरीज़ को पड़ा ही रहने दो।

**कपाल की हड्डी का टूटना**—इस अवस्था में घायल प्रायः बेहोश हो जाता है; क्योंकि चोट का असर मस्तिष्क पर पहुँच जाता है।

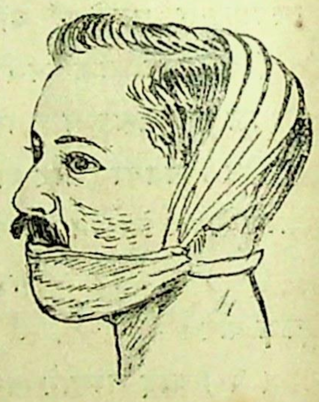
**उपचार**—घायल को सिर ऊँचा करके लिटा दो, और उसकी गर्दन और छाती के वस्त्र ढीले कर दो। घायल को कोई उन्मादक पदार्थ Stimulant न दो। उसे खूब शांत और गर्म रक्खो। उसके सिर में, चित्र में बतलाए हुए ढंग से पट्टी बाँधो।



सिर की पट्टी

**निम्न हनु (ठुड्डी) का टूटना**—यह हड्डी प्रायः टूटा करती है। घोड़े से अथवा साइकिल से, मुँह के बल गिरने से, यह हड्डी टूटा करती है।

**पहचान**—दाँतों की क़तार का टेढ़ा पड़ जाना, मसूड़ों से रक्तपात होना। निम्न हनु की तमाम हड्डियों का टूटना मिश्रित प्रकार का होता है।



निम्न हनु की पट्टी

**उपचार**—निम्न हनु को ऊर्ध्व हनु के साथ हथेली से दबाओ, और उसके ऊपर पट्टी बाँधो, जैसा कि चित्र में बताया गया है।

**हँसली या अक्षक** ( Collar bone ) **का टूटना**—

मुख्य चिह्न—यह हड्डी भी प्रायः टूटा करती है। जिस ओर की हँसली टूट जाती है, उस ओर की भुजा निराधार हो जाती है, और घायल उस ओर के कंधे को झुका देता तथा दूसरे हाथ से हँसली की ओर की भुजा की कुहनी को पकड़ रखता है।

उपचार—घायल का कोट और कुरता उतार दो। कुहनी को मोड़कर छाती पर रक्खो, और उसे कुहनी की झोल में डाल दो। एक पट्टी कुहनी से लाकर कमर में दो। यदि दोनों ओर की हड्डी टूट गई हो, तो बाँध दोनों कुहनियों को मोड़कर, अग्रबाहुओं को छाती पर रखकर, उन्हें छाती से कसकर बाँध दो, ताकि वे हिल-डुल न सकें।

प्रारंभिक चिकित्सक को अपनी बुद्धि से भी काम लेना और ऐसा उपाय निकालते रहना चाहिए, जिससे घायल को और अधिक कष्ट न होने पावे। उसे ध्यान रखना चाहिए कि स्प्लिंट्स के नीचे कपड़े की गद्दी अवश्य हो। टूटी हुई हड्डी के ऊपर और नीचे के जोड़ों को स्प्लिंट्स द्वारा कसा तो रक्खें, किंतु कभी घाव के ठीक ऊपर इन्हें न बाँधे।

ऊर्ध्वबाहु की हड्डी का टूटना—इस अवस्था में हड्डी या तो कंधे के समीप, मध्य-भाग पर अथवा

कुहनी के समीप टूटती है। कंधे के समीप हड्डी के टूटने की अवस्था में चौड़ी तिकोनी पट्टी को इस प्रकार रखते हैं कि पट्टी का मध्य-भाग कंधे के ऊपर पड़े। फिर पट्टी को बग़ल से घुमाकर दूसरे चंगे कंधे के ऊपर गाँठ दे देते हैं, और तत्पश्चात् अग्रबाहु को छोटी झोल में डाल देते हैं। जब ऊर्ध्व भाग की हड्डी मध्य-भाग में टूट जाती है, तब अग्रबाहु को ऊर्ध्वबाहु के साथ समकोण बनाते हुए मोड़ देते हैं, और चार स्प्लिंट्स (पटरियाँ) अगल-बग़ल रखकर बाँध देते हैं, जैसा कि चित्र में बताया गया है। एक

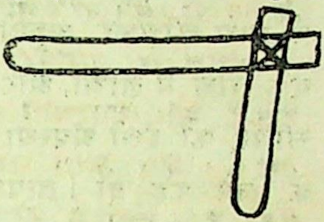


ऊर्ध्वबाहु की हड्डी का टूटना

बँधाव घाव के ऊपर होता है, और दूसरा नीचे। यदि चार स्प्लिंट्स न प्राप्त हों, तो दो ही से काम निकालना चाहिए। इनके भी न होने पर हिंदोस्तानी जूते या पुस्तकों अथवा लपेटे हुए अख़बार द्वारा काम निकाला जा सकता है। स्प्लिंट्स लगाने के बाद अग्रबाहु को छोटी झोल में डाल देते हैं।

तीसरी अवस्था में, जब हड्डी कुहनी के समीप टूटी हो और घायल मकान पर ही हो, डॉक्टर को बुला भेजो, और घायल को लिटाकर टूटी हुई भुजा को तकिए के सहारे रक्खो। जहाँ चोट लगी हो, उस स्थान पर बर्फ़ या

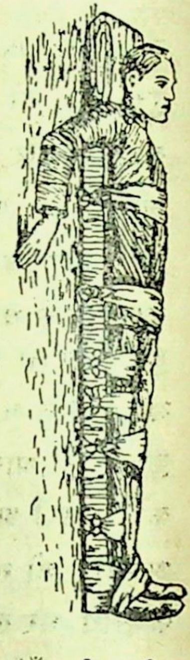
ठंढा जल रखकर आराम पहुँचाओ। यदि घायल मकान से दूर हो, तो लकड़ी के चिकने टुकड़े—एक ऊर्ध्ववाहु के बराबर और दूसरा अग्रवाहु और हाथ के बराबर—लो, और उन्हें चित्र की भाँति एक दूसरे के साथ समकोण बनाते हुए बाँध लो। फिर उनके नीचे भली भाँति गद्दी लगा लो, और कुहनी को आराम के साथ, सावधानी से मोड़कर, इस स्प्लिंट को भीतरी ओर रखकर, चार पतले बंधन लगा दो। फिर अग्रवाहु को गले की झोल में डाल दो। घायल को आराम के साथ घर लाकर स्प्लिंट हटा दो, और पहले की भाँति घाव पर बर्फ़ या ठंढे जल से आराम पहुँचाओ।



लकड़ी के दो चिकने टुकड़े समकोण बनाते हुए

**अग्रबाहु की हड्डियों का टूटना**—इस अवस्था में कुहनी को मोड़कर, ऊर्ध्वबाहु के साथ समकोण बनाते हुए, अग्रबाहु और हाथ को इस प्रकार रक्खो कि हथेली भीतर की ओर हो, और अँगूठे ऊपर की ओर। हाथ को इस अवस्था में रखकर किसी से कहो कि वह इसे इसी तरह पकड़े रहे। फिर स्वयं दो खपाचियाँ लो, और उन पर अच्छी तरह गद्दी लगाकर उन्हें—एक को भीतर की ओर से और दूसरी को बाहर की ओर से—बाँध दो, और तत्पश्चात् गले की बड़ी झोल में चोट खाए हुए भाग को डालो।

**जाँघ की हड्डी का टूटना**—इस अवस्था में टूटी हुई टाँग को सावधानी के साथ खींचकर अच्छी टाँग के साथ एक सीध में लाओ, और तब उसे अपने साथी को इसी अवस्था में पकड़ रखने के लिये कह दो। तत्पश्चात् एक बड़ी (स्प्लिंट) तैयार करो। यदि विलंब हो, तो दोनों टाँगों को एक दूसरी के साथ, टखनों के पास, बाँध दो। फिर एक लाठी या अन्य कोई सीधा एवं चिकना लकड़ी का टुकड़ा लो, और उस पर अच्छी तरह कपड़ा लपेट लो। यह लाठी या लकड़ी का टुकड़ा इतना लंबा होना चाहिए कि

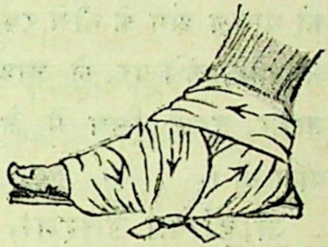


जाँघ की हड्डी का टूटना

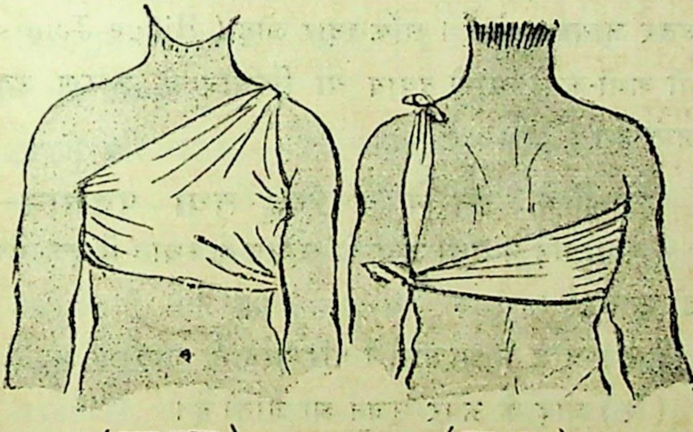
कंधे की बग़ल से पैर के तलवे तक पहुँच सके। इस लाठी या टुकड़े को घायल जाँघ की ओर रक्खो, और एक दूसरी स्प्लिंट, जो पुट्ठे से घुटने तक पहुँच सके, उसके भीतरी ओर रक्खो। फिर इन स्प्लिंट्स को तीन चौड़ी और चार सँकरी पट्टियों द्वारा जैसा चित्र में बताया गया है उसी भाँति दृढ़ कर दो। पहली चौड़ी पट्टी दोनों बग़लों के बीच, सीने पर, बाँधो। दूसरी चौड़ी पट्टी कमर पर बाँधो, और तत्पश्चात् दो सँकरी पट्टियाँ जाँघ में—एक घाव के ऊपर और दूसरी नीचे—बाँधो। तीसरी सँकरी पट्टी घुटने

और टख़ने के बीच में बाँधो। चौथी सँकरी पट्टी, बड़ी स्प्लिंट के नीचे के सिरे को दृढ़ करने के लिये, दोनों टख़नों पर, दोनों पैरों के साथ बाँधो। तीसरी चौड़ी पट्टी दोनों घुटनों पर बाँधी जाय।

**पैर की हड्डियों का टूटना**—प्रायः पैरों पर भारी बोझ गिरने के कारण ऐसी अवस्था प्राप्त होती है। पैर में सूजन और दर्द पैदा हो जाता है, और घायल पैर उस समय बेकाम हो जाता है। इस अवस्था में पैर के नीचे एक गद्दीदार स्प्लिंट रक्खो, और अँगरेज़ी आठ 8 की शक्ल में पट्टी बाँध दो, जैसा चित्र में बताया गया है। घायल पैर को ऊँचा करके रक्खो।



पैर की हड्डी का टूटना



( अग्र भाग ) ( पृष्ठ भाग )

छाती की हड्डी का टूटना

**छाती की हड्डियों का टूटना**—यह चोट बड़ी ही भयानक होती है; क्योंकि इसके नीचे शरीर के संचालक अंग हृदय और फुप्फुस होते हैं। तिकोनी पट्टी के आधार को घायल अंग के नीचे रक्खो, और सिरे को घायल भाग की ओर, कंधे पर, ले जाओ। तत्पश्चात् सिरों को पीछे ले जाकर दूसरे चित्र में जैसा बाँधा गया है, वैसा ही बाँध दो।

**जोड़ों का उतरना, मोच और चटख़**— Dislocation of the Joints, Sprains and Strains)

जब कभी झटके से या भारी बोझा उठाने से किसी जोड़ की हड्डियाँ अपने स्थान से हट जाती हैं, तो उसे जोड़ का उतरना कहते हैं। घुंडी अथवा छल्लेदार जोड़ ( Ball & Socket Joints ) अधिक घेरे में घूमने के कारण प्रायः उतर जाया करते हैं। साँकलदार जोड़ ( Hinge Joints ) भी कभी-कभी भारी दबाव या खिंचाव के कारण उतर जाते हैं।

**जोड़ों के उतरने के चिह्न तथा पहचान—**

( १ ) जोड़ में तथा जोड़ के समीप के स्थान में दर्द पैदा हो जाता है।

( २ ) जोड़ के आकार में परिवर्तन हो जाता है।

( ३ ) जोड़ के ऊपर सूजन आ जाती है।

( ४ ) जोड़ की गति रुक जाती है।

( ५ ) उससे जुड़े हुए अंगों की लंबाई में न्यूनता तथा अधिकता आ जाती है।

**उपचार**--( १ ) घायल अंग को आराम की अवस्था में सहारा देकर रक्खो।

( २ ) उस अंग से कपड़ा उतार दो, अथवा ढीला कर दो।

( ३ ) चोट खाए हुए स्थान पर बर्फ़ या ठंढा पानी रक्खो।

( ४ ) यदि ठंढक से आराम न पहुँचे, तो गरमी पहुँचाओ।

( ५ ) घायल को गरमी पहुँचाकर दर्द कम करो।

**जोड़ों की चटख़**—किसी विशेष अंग के जोड़ पर विशेष दबाव पड़ने या झटके से उसके बंधन ( Ligaments ) टूट जाते हैं, जिसके कारण नीचे लिखी बातें उत्पन्न होती हैं—( १ ) जोड़ में दर्द, ( २ ) उस जोड़ का हिल-डुल न सकना, और ( ३ ) उस स्थान पर सूजन आ जाना।

**टख़ने की चटख़**--यह चटख़ प्रायः हुआ करती है।

**उपचार**--बूट को उतारने की कोशिश न करो, बल्कि उसी के ऊपर एक मज़बूत पट्टी बाँध दो। पट्टी बाँधने के बाद उसे भिगो दो, ताकि वह और मज़बूती के साथ जकड़ ले। चटखे हुए जोड़ को ठंढे पानी, बर्फ़ अथवा गर्म पानी से धोने से दर्द और सूजन नहीं रहती। ठंढक या गरमी पहुँचाने के बाद जोड़ पर सावधानी के

साथ पट्टी बाँधनी चाहिए, ताकि जोड़ को हड्डियाँ अपने स्थान से हटने न पावें।

**मोच**—इसमें केवल मांस-पेशियाँ अधिक खिंच जाती हैं। प्रायः पैरों में, असमथल ज़मीन पर पैर पड़ जाने से, मोच आ जाया करती है, अथवा हाथों के दब जाने से उनमें कभी मोच आ जाती है। इसका उपचार केवल इतना ही है कि घायल अंग को आराम की अवस्था में रक्खे, और उसको गरमी पहुँचावे।

---

## छठा व्याख्यान

### घाव, जानवरों का काटना तथा डंक

घाव प्रायः किसी अस्त्र-शस्त्र द्वारा या किसी चोट के कारण चमड़े के कट जाने या छिल जाने अथवा मास-पेशियों के फट जाने से होता है। घाव का खुला रहना ही सबसे अधिक खतरनाक है; क्योंकि उसमें रोग के कीटाणु आ घुसते हैं। इसलिये घाव को अच्छा करने का सबसे बढ़कर उपचार पहले उसे इन कीटाणुओं से बचाए रखना है। अतएव घाव को कभी खुला न रखना चाहिए।

**घाव के उपचार**—(१) रक्त-क्षति को तुरंत बंद करो, (२) घाव को धूल इत्यादि से साफ़ करो, (३) उसे ज़हरीले कीटाणुओं से सुरक्षित रक्खो, (४) यदि संभव हो, तो गले की झोल द्वारा घायल अंग को आराम पहुँचाओ, और (५) गंदे हाथों से उसे कभी न छुओ।

घाव को बिगड़ने से बचाने में टिंक्चर ऑफ़् आयोडिन बड़े काम की चीज़ है। इसके कारण घाव में कीड़े जीने ही नहीं पाते। यदि घाव को ये कीड़े न बिगाड़ें, तो वह स्वयं स्वाभाविक ढंग से अच्छा हो जाय। गहरे घाव में पहले रक्त-स्राव को रोको, और तत्पश्चात् टिंक्चर ऑफ़् आयो-डिन में साफ़ कपड़े की गद्दी भिगोकर रक्खो। फिर ऊपर

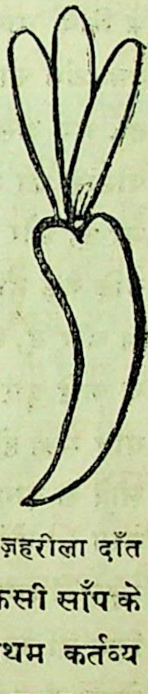
से बाँध दो। यदि घाव में ज़हरीले कीड़ों के प्रवेश हो जाने की संभावना हो, तो उसे कार्बोलिक लोशन द्वारा अथवा टिंक्चर ऑफ़् आयोडिन से, जो आधा पाइंट पानी में एक चम्मच हो, धोओ; और तब उस पर साफ़ पट्टी बाँधो। कार्बोलिक लोशन चालीस बूँद पानी में एक बूँद कार्बोलिक एसिड डालने से बनता है।

यदि घाव साफ़ है, अर्थात् उसमें धूल आदि के कण नहीं हैं, तो उस पर बोरिक एसिड भुरभुराकर, ऊपर से पट्टी बाँध दो। यदि वह अस्वच्छ है, तो उसे पहले साफ़ पानी और साबुन से धो डालो। फिर उस पर बोरिक एसिड छिड़को; अथवा वैसलिन और बोरिक एसिड मिलाकर लगा दो, और ऊपर से एक कपड़े की पट्टी बाँध दो।

**साँप का काटना**—साँप दो प्रकार के होते हैं—एक विषधर और दूसरे विष-रहित। सौभाग्य-वश विषधर साँपों की संख्या बहुत कम है। विषधर साँपों में करैत और गेहुँवर अथवा कोबरा बड़े भयंकर होते हैं। विषैले साँपों की ख़ास पहचान यह है कि उनके फन होता है। जब ये साँप क्रोध में होते या किसी पर धावा करने को होते हैं, तो अपने फन को फैला देते हैं। ज़हरीले साँपों के ऊपरी जबड़े में दो बड़े-बड़े पैने दाँत होते हैं, जो प्रायः आधा इंच से लेकर १ इंच के फ़ासले पर रहते हैं।

साँप जब किसी को काटता है, तब ये तीक्ष्ण ज़हरीले दाँत

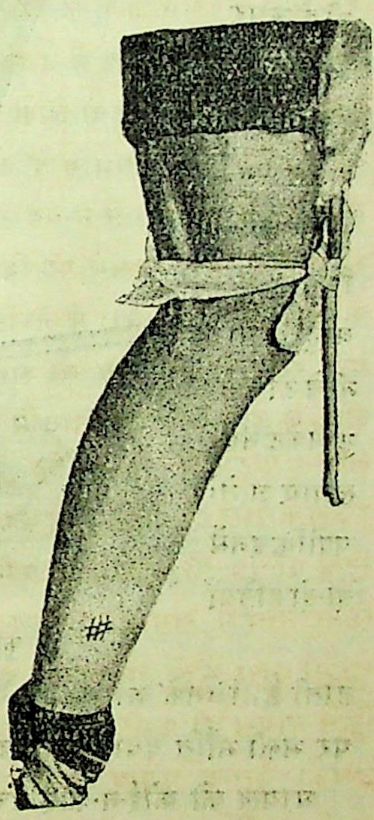
चमड़े और मांस को छेदकर प्रायः रक्त की नलियों में घुस जाते हैं। इन ज़हरीले दाँतों की जड़ में दो थैलियाँ होती हैं, जिनमें विष इकट्ठा रहता है। साँप किसी को काटते ही फ़ौरन् उलट जाता है, ताकि इन थैलियों से विष निकलकर, उन ज़हरीले दाँतों में होकर, घाव में चला जाय। ये ज़हरीले दाँत भीतर से पीले होते हैं, जिनमें होकर विष घाव में एक छिद्र द्वारा प्रवेश करता है। ज्यों ही विष रक्त की नलियों में प्रवेश कर पाता है, वह रक्त के साथ सारे शरीर में फैल जाता है, और इस प्रकार थोड़ी ही देर में यह विष सारे शरीर के रक्त में व्याप्त होकर प्राणघातक हो जाता है। किंतु यदि किसी प्रकार यह विष रक्त द्वारा शरीर में व्याप्त होने से रोक रक्खा जाय, और हृदय तक न पहुँचने पावे, तो प्राणी बच सकता है। अतः जो मनुष्य किसी साँप के काटे हुए की रक्षा करना चाहता हो, उसका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह विष से व्याप्त रक्त को शिराओं द्वारा हृदय तक न पहुँचने दे। अतएव उक्त रक्त-वाहक शिराओं पर ही दबाव डालना चाहिए। पहले अँगूठों से दबाव डाले, और बाद को, इसके छोड़ने के पहले, दो या तीन टुर्निकेट बाँधे, जो घाव के ऊपर के अंग में हों, अर्थात् घाव और हृदय के



ज़हरीला दाँत

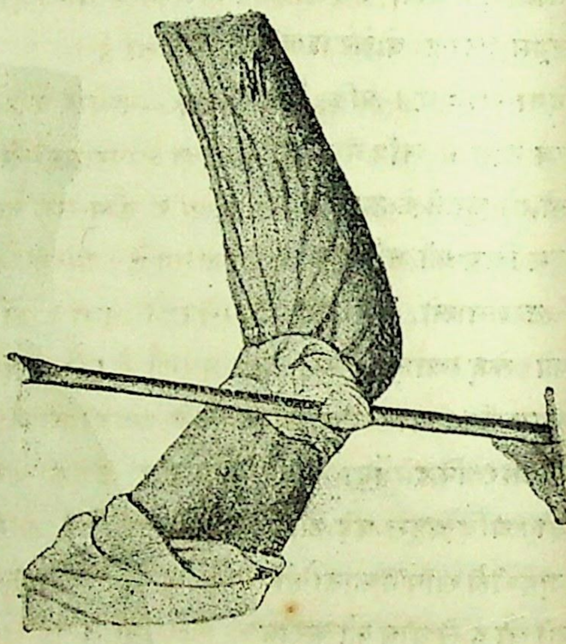
बीच के भागों में। यदि साँप ने कहीं उँगली में काटा हो, तो उँगली, कलाई, अग्रबाहु और ऊर्ध्वबाहु में पट्टियाँ कसकर बाँधनी चाहिए। ज्यों ही इस प्रकार की पट्टियाँ बँध जायँ, घाव से यथासाध्य रक्त निकाल देना चाहिए। ऐसा करने के लिये घायल अंग को खूब नीचा करके रखना और उक्त अंग को गर्म जल से धोना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, गर्म जल के बर्तन में उतने अंग को डुबाए रक्खे। यदि पोटाश की लाल बुकनी मिल सके, तो उसे पीसकर घाव में भर दे, और उसके गर्म गाढ़े जल से घाव को खूब धोवे। यदि रक्त ठीक तौर से न बह रहा हो, तो घाव को तेज़ चाकू से चीर दे, और उसमें पोटेशियम परमैंगनेट भर दे। साँप के काटे हुए के उपचार में ज़रा भी विलंब न करना चाहिए। यदि सह्य हो, तो घाव को आग के अंगारे या दहकते हुए लोहे से दाग दे, ताकि घाव में प्रवेश किया हुआ विष जल जाय। पोटेशियम परमैंगनेट विष को मारता है। यदि तुम स्कूल के पास हो, जहाँ तुम्हें कास्टिक पोटाश, अमिश्रित नाइ-ट्रिक एसिड या कार्बोलिक एसिड मिल सकती हो, तो उन्हें लेकर घाव में लगाओ। साथ-ही-साथ तुरंत किसी डॉक्टर को भी बुला भेजो, या घायल को ही उसके पास ले जाओ। किंतु घायल को कभी लेटने न दो, और न अचैतन्य होने दो। उसका चैतन्य बनाए रखने के लिये उसकी आँखों में ठंढे पानी के छींटे बराबर देते रहो, और मरीज़ को खड़ा रक्खो।

इसके अतिरिक्त हिम्मत दिलाने के लिये घायल से यह भी कहते रहो कि साँप बिलकुल ज़हरीला न था। इस अवस्था में मरीज़ को शराब भी पिलाने में कोई हर्ज नहीं। यदि शराब न मिले, तो गर्म चा और गर्म क़हवा देना चाहिए। और, यदि कोई दवाखाना नज़दीक हो, तो एक ड्राम 'साल वोलेटाइल' देना चाहिए। यदि पैर या टाँग में साँप ने काटा हो, तो घुटने के ऊपर दिए हुए चित्र की भाँति टुर्निकेट लगाओ, और घाव को तेज़ चाकू से पहले समानांतर चार रेखाओं में और फिर बेंड़ा चीर दो। यदि बहुत बड़े और ज़हरीले साँप ने काटा हो, तो चाक़ू से घाव को क़रीब चौथाई इंच गहरा कर दो। यदि घाव कलाई में या पैर पर, टख़ने और अँगूठों के बीच में हो, तो बेंड़ा न चीरो; क्योंकि



पैर या टाँग में साँप का काटना

ऐसा करने से उन स्थानों पर स्नायुओं के कट जाने का भय रहता है। इन अवस्थाओं में केवल लंबाई में और उन खास-खास स्नायुओं के समानांतर, जो वहाँ पर हों, चीरना चाहिए। यदि साँप ने हाथ में या अग्रबाहु में काटा हो, तो टुर्निकेट कुहनी के ऊपर दिए हुए चित्र की भाँति लगाना चाहिए। अग्रबाहु या नीचे टाँग में टुर्निकेट नहीं लगाए जाते; क्योंकि इनमें दो-दो हड्डियाँ



कुहनी के ऊपर टुर्निकेट

होती हैं, जिनके कारण उन स्थानों की रक्त-वाहक नलियों पर भली भाँति दबाव नहीं डाला जा सकता।

घायल को कोई-न-कोई उत्तेजक पदार्थ या दूध अवश्य देता रहे। यदि घायल बेहोश हो गया हो, अथवा उसके

हृदय की गति मंद पड़ गई हो, तो उसे बाह्य क्रियाओं द्वारा साँस ( Artificial Respiration ) लिवाना चाहिए। यदि दाँतों के निशान न मालूम पड़ें, तो साँप के काटे की पहचान नीम की पत्तियाँ खिलाकर करो ; क्योंकि साँप के काटे हुए प्राणी को नीम की पत्तियाँ कड़वी नहीं मालूम होतीं: दूसरे इसके खाने से लाभ भी होता है।

**पागल कुत्ते का काटना**—हमारे देश में कुत्ते इतने अधिक हैं, और इतनी ज़्यादा लापरवाही से रक्खे जाते हैं कि कौन-सा कुत्ता पागल है और कौन-सा नहीं, यह कहना बाज़ वक़्त बड़ा मुश्किल हो जाता है। कारण, गलियों में और इधर-उधर मारे-मारे फिरनेवाले कुत्ते की सूरत प्रायः पागल कुत्तों की तरह रहा करती है। किंतु पागल कुत्तों में एक विशेषता यह होती है कि वे अपनी जीभ प्रायः बाहर ही निकाले रहते हैं, और उससे लार टपका करती है। यदि कुत्ता किसी को काट खाय, तो उसे मार नहीं डालना चाहिए, बल्कि उसे कम-से-कम १० दिन तक बाँध रखना चाहिए, ताकि इस बात की भली भाँति परीक्षा कर ली जाय कि वह पागल है, या नहीं। यदि कुत्ते ने कपड़े के ऊपर से काटा है—जैसे पैर में मोज़े के ऊपर—तो ऐसी अवस्था में घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। कारण, इस अवस्था में कुत्ते की लार घाव में बिलकुल ही नहीं या बहुत ही कम पहुँच पाई होगी। किंतु अपने उपचार से न चूकना चाहिए।

**उपचार**—(१) घायल अंग में दो जगह पट्टियाँ बाँधो, जैसा साँप के काटने पर करते हैं, (२) घाव को गर्म जल से खूब धोओ, ताकि रक्त अच्छी तरह बाहर निकले, और विष घुल जाय। तत्पश्चात् घाव पर अमिश्रित कार्बोलिक एसिड या नाइट्रिक एसिड लगाओ। यदि पागल कुत्ते ने काटा है, तो घायल को डॉक्टर से जाँच कराकर कसौली भेजो। वहाँ इसके इलाज के लिये ख़ास तौर से अस्पताल खुला है। यदि ये एसिड न मिलें, तो पोटेशियम परमैंगनेट को ही घाव में भर दो।

**जानवरों के डंक**—पहले घायल स्थल के अंदर से टूटे हुए डंक को निकालो, और फिर घाव को अमोनिया या स्पिरिट से धोकर उसमें पोटेशियम परमैंगनेट रगड़ो। टिंक्चर ऑफ़् आयोडिन हर प्रकार के डंक के लिये रामबाण है। घायल को गरमी पहुँचाते रहो, ताकि दर्द कम मालूम हो। डंक मारनेवाले जानवरों में बिच्छू बड़ा ही भयंकर है। इसके डंक से कभी-कभी प्राणांत भी हो जाता है, नहीं तो असह्य वेदना तो अवश्य ही होती है। किंतु ऐसे भी प्राणी देखे जाते हैं, जिन पर बिच्छू के डंक का कुछ भी असर नहीं होता। लोकोक्ति है कि जिस बच्चे को प्रसूतिका-गृह में बिच्छू के डंक का धुआँ दिया जाता है, उस पर आगे चलकर बिच्छू के डंक का कुछ असर नहीं होता। अतः प्रायः औरतें ऐसा किया करती हैं। संभव है, इसमें कुछ वैज्ञानिक तथ्य भी हो।

जिस स्थान पर बिच्छू डंक मारे, उसके थोड़ा ऊपर पहले कसकर बाँध दो, और फिर हरा प्याज़ काटकर या तंबाकू का रस अथवा पोटेशियम परमैंगनेट को घाव पर रगड़ो। कानों में सेंधा-नमक का पानी छोड़ो, और पट्टी छोर दो। पिसे हुए ज़ीरे को घी और सेंधा-नमक के साथ फेटकर, कुछ गर्म करके और शहद में मिलाकर, घाव पर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

**भीतरी घाव, जलन और किसी गर्म तरल से जलना**— भीतरी घाव ( Bruise ) किसी गहरी चोट के कारण, अंग के भीतर केशिकाओं के टूट जाने से, होता है। घाव पहले लाल हो जाता है, फिर काला पड़ जाता है।

**उपचार**—घाव पर ठंढक पहुँचाओ, और उस पर टिंक्चर ऑफ़् आर्निका या मेथलेटेड स्पिरिट और पानी मिलाकर मलो।

**अग्नि से जलना**—जब हम दियासलाई जलाते हैं, और उसे नीचे की ओर लटकाकर रखते हैं, तो वह बहुत जल्द जल जाती है। किंतु यदि हम जलते हुए हिस्से को ऊपर रक्खें, तो वह देर में और धीरे-धीरे जलती है, हालाँकि जलने और जलानेवाली वही चीज़ है। कारण स्पष्ट है। पहली अवस्था में अग्नि की लपट ऊपर उठकर, शेष लकड़ी को गर्म कर जला डालती है; किंतु दूसरी

अवस्था में लपट ऊपर उठती है, और इस कारण लकड़ी धीरे-धीरे जलती है। इसी प्रकार जब किसी के कपड़ों में आग लग जाय, और वह खड़ा रहे, तो आग की लपटें ऊपर उठेंगी, तथा थोड़ी ही देर में उसके कपड़ों और शरीर को जला डालेंगी। किंतु यदि वह आग लगते ही लेट जाय, तो उसके कपड़े इतनी जल्द न जल सकेंगे, और न उसका शरीर एवं मुँह झुलसेगा। कपड़ों में आग लगने पर फ़ौरन् कंबल आदि से अपने को ढक लेना चाहिए, ताकि जलते हुए स्थान पर वायु न लगने पावे। इस प्रकार आग आप-से-आप बुझ जायगी। यदि कंबल आदि कोई लपेटने-योग्य वस्तु पास न हो, तो ज़मीन पर ही धूल में लेट जाय, या जलते हुए स्थान पर धूल डाल दे। किंतु कभी भूलकर भी आग लगने पर दौड़े नहीं, और न खड़ा ही रहे। यदि आग थोड़ी ही दूर तक लगी हो, तो हाथ से दबाकर उसे बुझा दे। जले हुए अंग से कपड़े को उतारते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए; क्योंकि प्रायः कपड़ा जले हुए अंग से चिपक जाता है; और यदि वह खींचकर निकाला जायगा, तो साथ ही चमड़े को भी छीलता आवेगा। जहाँ पर कपड़ा चिपक गया हो, वहाँ पर उसको इर्द-गिर्द से कैंची से काटकर छोड़ देना और उस पर जैतून का तेल लगा देना चाहिए। फिर सूख जाने के बाद सावधानी से अलग करना चाहिए। यदि जले हुए अंग

पर फफोले पड़ गए हों तो उन्हें फोड़ना न चाहिए; क्योंकि नीचे के हिस्से की रक्षा के लिये फफोले ही उपयुक्त रक्षक हैं।

जले हुए स्थान पर तीसी का तेल और चूने का पानी बराबर-बराबर भागों में मिला हुआ लगाना बड़ा ही लाभकारी है। इसी में कपड़े को भिगोकर जले हुए स्थान पर रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी वनस्पति का तेल, घी, मक्खन आदि भी रक्खा जा सकता है। किंतु कभी भूलकर भी कोई खनिज तेल—जैसे, मिट्टी का तेल पेट्रोलियम या स्पिरिट—न रक्खे। जले हुए स्थान पर आटे की एक मोटी तह रखने से भी बड़ा आराम पहुँचता है। यदि दिमाग़, फेफड़े और दिल आदि भीतरी अंगों पर जलन का असर पहुँचा हो, तो डॉक्टर को तुरंत बुला भेजो। गले के ऊपर का जलना बहुत ही भयानक होता है। जले हुए अंग को ढककर रखना बहुत ही ज़रूरी है, ताकि हवा उसे स्पर्श न कर सके। कच्चा आलू पीसकर, कपड़े पर पोतकर, घाव पर रखने से बड़ा आराम मिलता है। यदि स्कूल के साइंस-क्लास में कोई लड़का किसी एसिड से जल जाय, तो जले हुए अंग को पतले क्षार से धोना चाहिए। यदि वह किसी तेज़ क्षार से जल गया हो, उसे पतले एसिड से धोना चाहिए।

यदि आग से पैर-हाथ जल गया हो, तो उसे गर्म जल

में रक्खो। उसमें थोड़ा-सा सोडा-बाइ-कार्बोनेट भी पड़ा हो, अथवा उसे कार्बोलिक लोशन में—४० भाग पानी में एक भाग कार्बोलिक एसिड—रक्खो। यदि मुँह झुलस गया हो, तो कपड़े का एक टुकड़ा लो, और उसमें मुँह, नाक और आँखों के लिये जगह बनाकर, उस पर वेसलीन लगाओ। वेसलीन में आधा ड्राम यूक्लिपट्स तेल मिला हो। इस भिगोए हुए कपड़े को मुँह पर रखकर बाँध दो। और अंगों के लिये ताज़ा नारियल का तेल भी बड़ा लाभकारी है।

यदि कार्बोलिक एसिड और ग्लिसरिन प्राप्त हों, तो एक चम्मच कार्बोलिक एसिड और एक चम्मच ग्लिसरिन, एक पाइंट नारियल के तेल में मिलाकर, जले हुए स्थान पर लेपकर ऊपर से साफ़ कपड़े से बाँध दो। इस बँधे हुए कपड़े के ऊपर दिन में दो-तीन बार कार्बोलिक एसिड का पानी भी छिड़कते रहो, ताकि कीटाणु घाव में प्रवेश न करने पावें। यदि घाव रक्तवर्ण हो जाय, और उसमें सूजन अथवा सफ़ेद पीब दिखलाई दे, तो पट्टी को प्रतिदिन हटाकर, उस पर बोरिक एसिड छिड़ककर नई पट्टी बाँधा करे।

यदि घायल बहुत ज़्यादा जल गया हो, और उसे असह्य पीड़ा हो रही हो, तो उसे गर्म कंबल में लपेट दो, और उसकी बग़लों में और बिस्तर में गर्म पानी की बोतलें रक्खो, उसे गर्म दूध या चा पीने को दो।

यदि किसी मकान में आग लग गई हो, तो पहले

घरवालों को इत्तिला दो, और फिर तुरंत समीप के फ़ायरब्रिगेड या पुलीस को सूचित करो, और तब आग के बुझाने की तदबीर करो। पड़ोसियों को दरी और सीढ़ियाँ आदि लेकर आने को पुकारो, और कंबल तथा दरियाँ तानकर उन पर छत-वाले आदमियों को कुदाओ। घर के अंदर से धुए या लपक के कारण जो प्राणी बाहर न आ सकते हों, उन्हें बचाने के लिये गीला कंबल अपने चारों तरफ़ लपेटकर, और मुँह और नाक पर गीला रूमाल लगा-कर अंदर जाओ। कंबल के बीच में सिर जाने के लिये छेद कर लो, तो बहुत सहू-लियत होगी। कारण, इस अवस्था में दोनों हाथ स्वतंत्र रहेंगे। यदि घर में धुआ बुरी तरह भर गया हो, तो सतह पर लेटकर अंदर जाओ, और घर



धुए से घसीटकर बाहर लाना

के अंदर के जो लोग बेहोश हो गए हों, उन्हें जैसा चित्र में दिया है, बाँधकर बाहर घसीट लाओ। धुआँ गर्म होने के कारण सतह से ऊपर होता है। आग-लगे घरों के अंदर लोग घबड़ाकर चारपाइयों, बिस्तरों और टेबुलों के नीचे छिपते हैं। अतः इन जगहों में उन्हें अवश्य खोजना चाहिए। बेहोश प्राणियों को बाहर निकालकर उन्हें उसी प्रकार बाह्य उपायों द्वारा साँस लिवानी तथा मरहम-पट्टी करनी चाहिए।

# सातवाँ व्याख्यान

## विष-पान तथा उसका उपचार

अनभिज्ञता और अज्ञान ही विष-पान के लिये विशेषतः उत्तरदायी हैं। भारतवर्ष में हिंदू-स्त्री-समाज ने इसे बुरी तरह अपनाया है। पुरुष भी अफ़ीम, शराब, भंग, गाँजा, चरस, कोकेन आदि ज़हरीले पदार्थ खाने में अपनी शान समझते हैं। उनकी अज्ञानता की सीमा का भला कोई ठिकाना है, जब वे यह कहते हैं कि "जो न पीवे भंग की कली, उस लड़के से लड़की भली"। इत्यादि इन नशीले एवं उन्मादक पदार्थों के सेवन करनेवालों में अनेक अकाल-मृत्यु के शिकार होते हैं, कितने ही रेलों में कट जाते हैं, कितने ही मकानों के ऊपर से गिरकर मर जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे कभी-कभी ऐसे अमानुषिक कृत्य भी कर बैठते हैं, जिन्हें देखकर रोमांच हो आता है। कभी-कभी तो वे अपनी बड़ी-से-बड़ी हानि कर बैठते हैं। कारण, इन उन्मादक पदार्थों के सेवन करने पर मस्तिष्क अपना कार्य नहीं कर सकता। इससे विचार-शक्ति जाती रहती है, और मनुष्य पशु से भी गया-बीता हो जाता है। आश्चर्य तो यह है कि जिन पदार्थों को पशु भी सूँघकर त्याग देते हैं, उन्हें बुद्धि रखनेवाला

प्राणी मनुष्य, जो सर्वश्रेष्ठ बनने का दम भरता है, कैसे अपनाता है! इन पदार्थों का उपयोग विचारशील मनुष्य केवल ओषधि-रूप में करते हैं।

विषों की संख्या गिनाना कठिन है। कारण—"होहिं सुवस्तु कुवस्तु जग, पाइ सुयोग कुयोग।" जो पदार्थ साधारण रूप से हमारी रुचि के प्रतिकूल हैं, या जिनका प्रयोग हमारे शरीर को हानि पहुँचाता है, वे सभी विष हैं। यों तो भोजन भी अरुचि में विष-तुल्य अपना प्रभाव प्रकट करता है, और लाभदायक पदार्थ भी अधिक परिमाण में हानिकारक होते हैं।

भिन्न-भिन्न विषों के उपचार के लिये भिन्न-भिन्न ओष-धियाँ एवं उपाय हैं। जब कभी कोई बेहोश आदमी कहीं पड़ा मिले, तो तात्कालिक चिकित्सक को चाहिए कि (१) वह उक्त प्राणी के आसपास चारों तरफ़ ध्यान-पूर्वक देखे कि कोई विषैला पदार्थ तो नहीं है, (२) वहाँ पर जो कुछ मिले, जिससे किसी विष का संदेह हो, तो उसे हिफ़ाज़त के साथ रख ले; फेंके नहीं, (३) ध्यान-पूर्वक देखे कि बेहोश प्राणी के शरीर पर कहीं—विशेषकर हाथों और पैरों पर—साँप के ज़हरीले दाँतों के निशान तो नहीं हैं, (४) बेहोश प्राणी के होठों या कपड़ों पर किसी प्रकार के दाग़ तो नहीं हैं, (५) उसके मुँह से किसी प्रकार की दुर्गंध तो नहीं निकल रही है, (६) उसकी आँखों के तिल अपनी हालत में

हैं, या बढ़-घट गए हैं? इत्यादि। स्मरण रहे, वे धतूरे के विष में लंबे और पतले पड़ जाते हैं, एवं अफ़ीम के विष में छोटे।

## उपचार के कुछ साधारण नियम

(१) डॉक्टर या वैद्य को बुला भेजे, और यह भी यथासाध्य ठीक-ठीक जाँचकर कहलाने की कोशिश करे कि उक्त प्राणी ने किस प्रकार का विष खाया है?

(२) विष को नाश तथा पतला करने का उपाय करो।

(३) आमाशय की दीवालों की रक्षा, मरीज़ को मीठा तेल, दूध, चा या घुला आटा पिलाकर करो।

(४) जब मुँह और होठों पर किसी प्रकार के छाले न देख पड़ें, तभी मरीज़ को उलटी करानेवाले पदार्थ दो। उलटी कराने के लिये, दो चम्मच मीठा तेल तथा एक चम्मच नमक गर्म पानी में घोलकर देना चाहिए।

गले में उँगलियाँ या किसी चिड़िया का पर डालने से भी उलटी होने लगती है।

वास्तव में विषैले पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जो मुँह, गले और पेट आदि में जलन पैदा कर देते और जला देते हैं; दूसरे वे, जो चुपचाप अपना काम करते हैं। पहले प्रकार के विष-पान में क़ै न करानी चाहिए; क्योंकि इससे अधिक हानि होने की संभावना है।

खालिस अम्ल और क्षार जलन पैदा करनेवाले विष हैं। अतः इनके पान किए हुए प्राणी को क़ै न करानी

चाहिए। इनका नाश एक दूसरे से होता है, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। अर्थात् क्षारिक विष-पान में पतला अम्ल पिलाना चाहिए, और अम्ल-विष-पान में पतला क्षार। इसके बाद मरीज़ को ऐसा पदार्थ पिलावे, जिससे गले और पेट में ठंढक तथा आराम पहुँचे।

क़ै करानेवाले पदार्थों में इराक्सीस (Zinc Sulphate) भी है। चा के चम्मच का चौथाई, आधा ग्लास पानी में घोलकर पिलाने से तुरंत क़ै होती है। अफ़ीम के विष में तूतिया, आधे ग्लास पानी में दुअन्नी-भर, मिलाकर देने से क़ै हो जाती है।

## विष की विशेष क़िस्में

( १ ) निद्रा-उत्पादक विष

( २ ) उत्तेजक विष—जैसे धातुएँ—आरसेनिक, पारा, शीशे का चूर्ण और मिट्टी का तेल इत्यादि

( ३ ) जलानेवाले विष—जैसे क्षार और अम्ल। ये पदार्थ तंतुओं को नष्ट कर डालते हैं।

( ४ ) स्नायु-नाशक विष—ये नाड़ी-मंडल को नष्ट कर डालते हैं, जिसके कारण बकना-झकना शुरू हो जाता है। जैसे शराब, गाँजा, चरस, और विशेष प्रकार के कुकरमुत्ते।

विष-पान का उपचार प्रारंभ करने के पहले इस बात का ठीक-ठीक पता लगा लेना आवश्यक है कि विष किस प्रकार का है?

## साधारण विष, उनकी पहचान तथा उपचार

| सं० | विष | पहचान | उपचार |
|---|---|---|---|
| १. | अम्ल | (१) होंठ और मुँह पर छाले पड़ जाना। ये छाले Nitric acid से पीले और Sulphuric acid से काले पड़ते हैं।<br>(२) मुख, गले और पेट में दर्द<br>(३) अधिक प्यास मालूम होना<br>(४) लाल रंग की उलटी होना<br>(५) बातचीत करने में कठिनाई मालूम होना<br>(६) बेहोशी छाई रहना | (१) उलटी करानेवाले पदार्थ न दो।<br>(२) आधा पाइंट पानी में एक चम्मच Bicarbonate of soda या chalk मिला-कर दो।<br>(३) $\frac{1}{4}$ पाइंट अंडी का तेल, एक पाइंट पानी में मिमा-कर दो।<br>(४) दूध खूब दो।<br>(५) पानी में आटा, सोडा या सेलखरी घोलकर पिलाओ। |

| नं० | विष | पहचान | उपचार |
|---|---|---|---|
| २. | कार्बोलिक एसिड | (१) होंठ और मुँह पर सफ़ेद छाले पड़ जाना<br>(२) मांस-पेशियों का ढीला पड़ जाना एवं व्यर्थ-सा हो जाना<br>(३) अचैतन्य उत्पन्न होना<br>(४) साँस से कार्बोलिक एसिड की बू आना | (१) ½ औंस सोडियम सल्फ़ेट, ½ पाइंट गर्म पानी में मिलाकर दो।<br>(२) ¼ पाइंट अंडी का तेल, एक पाइंट पानी में मिलाकर दो।<br>(३) दूध ख़ूब पिलाओ।<br>(४) पैरों में गरमी पहुँचाओ।<br>(५) बाह्य उपायों द्वारा साँस उत्पन्न करो। |
| ३. | तीव्र क्षार— जैसे अमोनिया, कास्टिक सोडा और पोटाश | (१) क़ै और दस्त जारी रहना<br>(२) दर्द होना और छाले पड़ना<br>(३) अचैतन्य उत्पन्न हो जाना | (१) क़ै करानेवाले पदार्थ न दो।<br>(२) नींबू या संतरे का शरबत दो।<br>(३) दूध ख़ूब पिलाओ।<br>(४) अंडी का तेल ¼ पाइंट एकपाइंट पानी में मिलाकर दो। |

| नं० | विष | पहचान | उपचार |
| --- | --- | --- | --- |
| ४. | शीशे का चूर्ण | (१) पेट में कठिन पीड़ा होना<br>(२) ख़ूब पेट झड़ना<br>(३) मल के साथ ख़ून के क़तरे भी गिरना, कभी-कभी क़ै भी होना, जिसमें शीशे के चूर्ण हों। | (१) पहले ख़ूब खाना खिलाओ, ताकि शीशे के चूर्ण भोजन के साथ सनकर कम हानि पहुँचावें ;<br>(२) फिर क़ै कराओ। |
| ५. | मिट्टी का तेल | (१) मुँह और गले में अत्यंत जलन तथा दर्द होना<br>(२) क़ै में तेल की बूँदें देख पड़ना<br>(३) साँस से भी तेल की बदबू आना<br>(४) कड़ी प्यास लगना<br>(५) अचैतन्य उत्पन्न होना | (१) क़ै कराने-वाले पदार्थ दो।<br>(२) पैरों में गरमी पहुँचाओ।<br>(३) ब्रांडी दो। |
| ६. | पारा | (१) क़ै और दस्त होना<br>(२) जीभ का सफ़ेद देख पड़ना<br>(३) अचैतन्य उत्पन्न होना | (१) पानी में आटा घोलकर दो।<br>(२) गर्म पानी में नमक घोलकर पिलाओ।<br>(३) लेमनेड पिलाओ। |

| नं० | विष | पहचान | उपचार |
|---|---|---|---|
| ७. | तारपीन का तेल | ( १ ) साँस में घुर-घुराहट होना<br>( २ ) आँख की पुत-लियाँ छोटी देख पड़ना<br>( ३ ) मांस-पेशियाँ सख़्त हो जाना<br>( ४ ) साँस से तेल की बू आना | ( १ ) क़ै कराने-वाले पदार्थ दो ।<br>( २ ) दस्त लाने-वाली चीज़ें दो ।<br>( ३ ) दूध या पानी में आटा घोल-कर पिलाओ । |
| ८. | अफ़ीम अथवा मरफ़िया | (१) जम्हाई आना<br>(२) आँख की पुत-लियाँ बहुत ही छोटी पड़ जाना<br>(३) थोड़ी-थोड़ी बे-होशी रहना<br>(४) साँस का धीरे-धीरे किंतु गहरा चलना<br>(५) शरीर में पसीना आना<br>(६) साँस से अफ़ीम की बू आना | (१) गर्म पानी में नमक मिलाकर दो ;<br>(२) गर्म चा ख़ूब पिलाओ ।<br>(३) एक पाइंट पानी में, दस ग्रेन पोटेशियम परमैंग-नेट घोलकर दो ।<br>(४) मरीज़ को पानी के छींटे मारकर चैतन्य रक्खो ।<br>(५) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो, जब अचैतन्य आने लगे । |

| नं० | विष | पहचान | उपचार |
| --- | --- | --- | --- |
| ९. | धतूरा | (१) गला सूख जाना<br>(२) निगलने में रुकावट होना या प्यास लगना<br>(३) झाईं आना और लड़खड़ाना।<br>(४) चेहरा लाल हो जाना<br>(५) पुतलियाँ लंबी एवं पतली पड़ जाना<br>(६) मरोज, इधर-उधर अनाप-शनाप बकता फिरे, ख़याली चीज़ों को पकड़ने के लिये हाथ उठावे, फिर बेहोश होकर गिर जाय। | (१) गर्म पानी में नमक घोलकर पिलाओ।<br>(२) गर्म चा पीने को दो।<br>(३) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो।<br>(४) गर्म पानी की बोतलें बग़ल में दो; अंगों को रगड़ो। |
| १०. | शराब | (१) चेहरा और आँखें सुर्ख़ हो जाना<br>(२) होंठ नीले पड़ जाना<br>(३) झाईं आना, पैर लड़खड़ाना<br>(४) साँस से शराब की बू आना<br>(५) अचैतन्य होना | (१) आँखों में ठंढे पानी के छींटे दो।<br>(२) चैतन्य होने पर क़ै कराओ।<br>(३) गर्म चा या दूध पिलाओ।<br>(४) नथुनों में नौसादर और चूना रगड़कर सुँघाओ।<br>(५) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो। |

| नं० | विष | पहचान | उपचार |
|---|---|---|---|
| ११. | भाँग, गाँजा और चरस | (१) पहले मरीज़ का ख़ूब चुस्त मालूम होना, फिर जम्हाइयाँ लेने लगना और बाद को बेहोश हो जाना<br>(२) आँख की पुतलियाँ बड़ी हो जाना | (१) क़ै करानेवाली चीज़ें दो।<br>(२) गर्म चा पिलाओ।<br>(३) पैरों में गरमी पहुँचाओ।<br>(४) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो। |
| १२. | कुचला आदि (वह ज़हर, जो ज़हरीले कीड़ों के मारने में काम आता है) | (१) पीठ टेढ़ी पड़ जाना<br>(२) जबड़े बैठना (दाँत बैठना)<br>(३) आँखों की टकटकी लगना और पुतलियों का फैलना<br>(४) साँस लेने में कठिनाई मालूम पड़ना<br>(५) नाड़ी का निर्बल; किंतु तेज़ चलना | (१) क़ै करानेवाली चीज़ें दो।<br>(२) एक पाइंट गर्म पानी में, १० ग्रेन पोटेशियम परमैंगनेट मिलाकर दो।<br>(३) गर्म चा दो।<br>(४) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो।<br>(५) आँखों पर ठंडे पानी के छींटे दो।<br>(६) १५ बूँद अमोनिया पानी में मिलाकर पिलाओ। |

## घायलों और मरीज़ों को स्थानांतर करना

घायलों और मरीज़ों को किसी स्थान से दूसरे सुरक्षित एवं उपयुक्त स्थान में ले जानेवालों को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वे उन्हें इस प्रकार सावधानी और सहूलियत से ले जायँ कि घायल या मरीज़ के शरीर को किसी प्रकार कष्ट न होने पावे। घायल को यदि कोई ऐसी हड्डी टूट गई हो कि उसे ले जाने में किसी विशेष क्षति के हो जाने की संभावना हो, तो डॉक्टर को वहीं बुला भेजना चाहिए। इस बीच में उसे वहीं रखकर यथासाध्य आराम पहुँचाना तात्कालिक चिकित्सकों का कर्तव्य है।

यदि किसी आदमी के पैर में मोच आ गई हो, या पैर कुचल गया हो, तो उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने का सरल उपाय यह है कि उसके घायल पैर की ओर खड़ा हो जाय, और उसके उसी ओर की भुजा को अपनी गर्दन पर से घुमाकर, अपने दूसरी ओर के हाथ से पकड़ ले, और उसकी तरफ़वाले हाथ से उसकी कमर को सहारा देते हुए धीरे-धीरे चले। घायल प्राणी को चाहिए कि अपने घायल पैर को ज़मीन से उठाए हुए, ले जानेवाले की सहायता के बल, उसी के साथ-साथ, एक पैर उठाकर चले। जब कभी किसी बेहोश प्राणी को अकेले उठाकर ले जाना हो, तो दिए हुए चित्र की भाँति उठावे। यह ढंग प्रायः उन लोगों को काम में लाना पड़ता है, जो किसी आग लगे हुए

मकान से बेहोश प्राणियों को बाहर निकालते हैं। इसमें दाहना हाथ स्वतंत्र रहता है, जिससे धुए वग़ै रास्ता और दर-वाज़ा टटोलने में बड़ी सहायता मिलती है।



बेहोश आदमी को आग लगे हुए घर से निकालकर बाहर लाना।

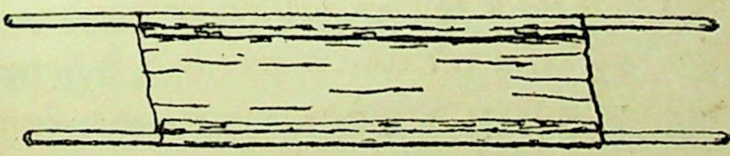
जब बेहोश घायल या मरीज़ को ले जाने के लिये एक से अधिक प्राणी हों, और ले जाना भी दूर तक हो, अथवा मरीज़ की कोई हड्डी टूट गई हो, तो उसे ऊपर बतलाए हुए ढंग से न ले जाना चाहिए। इस अवस्था में किसी अच्छी कसी हुई चारपाई को उलटकर, उस पर उसे ले जाना चाहिए। यदि चारपाई न मिले, तो दो लाठियाँ लो, और दो कोटों की आस्तीनें उलटकर भीतर की ओर कर दो। फिर उनके अंदर से लाठियों को निकालकर बटन भी भीतर की ओर या दूसरी ओर लगा दो। बस, एक अच्छी डोली तैयार हो गई। इस डोली को ले जाने के लिये चार आदमियों की आवश्यकता होगी। एक-एक आदमी डोली के चारों सिरों पर अगल-बग़ल रहेंगे, ताकि मरीज़ किसी प्रकार गिरने न पावे, डोली अधिक हिले-डुले नहीं, और न लाठियाँ ही अधिक लचें।

इस प्रकार की डोलियों में मरीज़, घायल या मूर्च्छित प्राणी को ले जाने में इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि ले जाने-वालों के क़दम बराबर और एकसाथ उठें, और उस पर लेटे हुए प्राणी का सिरहाना हमेशा पैर की अपेक्षा थोड़ा सा उठा रहे, जिससे उसे किसी प्रकार कष्ट न पहुचे। मरीज़ या घायल को ज़मीन से उठाकर डोली पर रखते समय भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके सब अंग एकसाथ उठें, और एकसाथ डोली पर रक्खे जायँ, ताकि उसके और विशेषतः घायल के घायल अंग पर ज़रा-सा भी ज़ोर न पड़े।

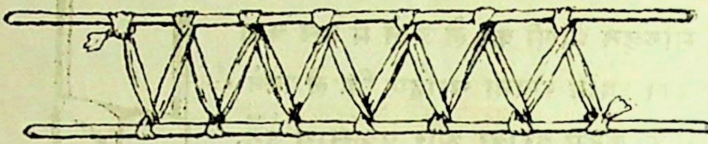
बालक अपने डंडों और साफ़ों के द्वारा कई प्रकार की डोलियाँ बनाते हैं। इन डोलियों की बनावट बहुत कुछ ऐसी ही होती है, जैसी चित्रों में दी है।



कोटों से बनी हुई डोली



बालचरों द्वारा बनाई हुई डोली



बालचरों द्वारा बनाई हुई एक दूसरे प्रकार का डोली

---

# आठवाँ व्याख्यान

## श्वास-क्रिया तथा बाह्य उपायों द्वारा श्वास लेना

## Artificial Respiration

पहले बतलाया जा चुका है कि श्वास-क्रिया फुप्फुसों द्वारा होती रहती है। उसका उद्देश्य रक्त की विकारी दूषित कार्बोनिक एसिड गैस को बाहर निकालना और बाहर की स्वच्छ एवं लाभकारी ओषजन ( Oxygen )-वायु को अंदर लेकर रक्त को शुद्ध करते रहना है। श्वास-क्रिया में नाक, श्वास-मार्ग और फुप्फुस काम करते हैं। इस क्रिया के दो भाग हैं—( १ ) वायु नाक से होकर, श्वास-मार्ग से होती हुई फुप्फुसों के भीतर चक्कर खाती है। इस क्रिया को उच्छ्वासन ( Inspiration ) कहते हैं। जब वही वायु ओषजन को देकर और कार्बोनिक एसिड गैस को लेकर फिर नथुनों से बाहर आती है, तब उसकी इस क्रिया को प्रश्वासन ( Expiration ) कहते हैं। एक उच्छ्वास और एक प्रश्वास से एक बार की श्वास-क्रिया ( Respiration ) पूरी होती है।

प्रौढ़ मनुष्य साधारण अवस्था में, एक मिनट में, प्रायः १६-१७ बार साँस लेता है। अफ़ीम से साँस की संख्या घट जाती है। साँस जहाँ तक हो, गहरी लेनी चाहिए,

ताकि वायु फुफ्फुसों में, उसके कोनों-कोनों में, भली भाँति भ्रमण कर सके। उच्छ्वास-वायु में ओषजन का अधिक और कार्बनद्विओषित-वायु या कार्बोनिक एसिड गैस का केवल अल्प भाग होता है। प्रश्वास-वायु में इनका अनुपात इसके बिलकुल विपरीत होता है।

ओषजन जीवन के लिये एक परमावश्यक पदार्थ है। इसके बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। इसके विपरीत कार्बनद्विओषित-वायु प्राणियों के लिये विष-तुल्य है। हमारे शरीर में शरीर-कणों ( Cells ) के टूटने-फूटने या भाँति-भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होते रहने से यह दूषित कार्बनद्विओषित-वायु बनती रहती है। जिस रक्त में यह गैस अधिक परिमाण में होती है, उसका रंग स्याही लिए हो जाता है। यह दूषित रक्त फुफ्फुसों में ओषजन द्वारा शुद्ध होकर फिर लाल रंग का हो जाता है। इससे प्रकट है कि रक्त की शुद्धि और उससे जीवन-निर्वाह के लिये श्वास-क्रिया का उचित रूप से होता रहना बहुत आवश्यक है। श्वास-क्रिया का रुक जाना जीवनांत ही है।

यह श्वास-क्रिया कभी-कभी अप्राकृतिक एवं अस्वाभाविक विघ्नों के उपस्थित हो जाने से बंद हो जाती है, जैसा पानी में डूबने पर, धुए से गला घुटने पर, गले में फाँसी लगने अथवा बिजली के प्रवाह में पड़ जाने पर, आग से झुलस जाने या लू लग जाने पर होता है।

इन अस्वाभाविक विघ्नों से उत्पन्न श्वास-क्रिया की रुकावट को हम बाह्य उपायों द्वारा श्वास-क्रिया (Artificial Respiration) से नाश कर सकते हैं। ध्यान रहे, लोगों की अनभिज्ञता के कारण इन अस्वाभाविक विपत्तियों से अनेकों प्राणी मृत्यु के ग्रास बनते रहते हैं।

बाह्य उपायों द्वारा श्वास-क्रिया के तीन ढंग—

(१) शेफ़र साहब का ढंग ( Schafer's Method )—कपड़े निकाल डालो, वक्षःस्थल अथवा गले के कपड़ों को खोल दो या ढीला कर दो। मरीज़ को तुरंत पेट के बल लिटा दो, और बाहुओं को आगे की ओर फैला दो। फिर मरीज़ के सिर की ओर मुँह करके, उसकी बग़ल में घुटने टेककर बैठ जाओ, और मरीज़ के गले, मुँह तथा नथुनों को



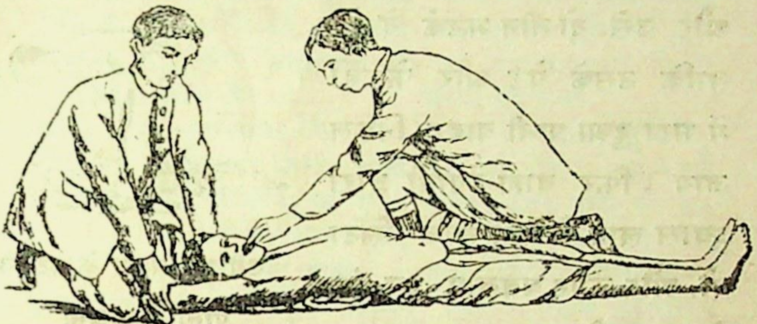
शेफ़र साहब के ढंग से बाह्य उपायों द्वारा श्वास-क्रिया

भली भाँति साफ़ करो। इसके बाद अपने हाथों की हथेलियों को मरीज़ की पीठ पर, कमर के पास रखकर, आ

को गर्दन की ओर दबाते हुए सरकाओ, और ज्यों-ज्य छाती की ओर पहुँचते जाओ, त्यों-त्यों अधिक दबाव करते जाओ। फिर कंधों की सीध में पहुँचने के बाद दबाव को बिलकुल कम कर दो, और हाथों को बिना उठाए हुए फ़ौरन् अपनी पहले की जगह पर ले आओ, तथा पहले की भाँति फिर करो, जैसा कि चित्र में बताया गया है। इस प्रकार एक मिनट में १५ से लेकर १८ बार करते रहो; क्योंकि मनुष्य प्रायः एक मिनट में इतनी ही बार साँस लेता है। यदि मरीज़ शीघ्र चैतन्य न हो, और साँस लेना प्रारंभ न करे, तो दो-एक घंटे तक बदलते रहकर ऐसा करते रहो, जब तक कि कोई वैद्य या डॉक्टर आकर यह न कह दे कि इसके बचने की अब कोई आशा नहीं है। मरीज़ को बीच-बीच में अमोनिया सुँघाते रहना चाहिए। जब मरीज़ की साँस आप-से-आप चलने लगे, तब उसके शरीर में गरमी पहुँचानी चाहिए।

(२) सिल्वेस्टर साहब का ढंग (Sylvester's Method)—कपड़े ढीले कर दो अथवा शीघ्रता-पूर्वक उतार डालो। मरीज़ को चित लिटा दो। उसके कंधों के नीचे तकिया या दूसरा कोई मुलायम कपड़ा रख दो, ताकि उसका सिर थोड़ा-सा नीचे को लटकता रहे। फिर मरीज़ के मुँह, गले और नथुने आदि साफ़ कर लो, और तब उसकी भुजाओं को कुहनी के नीचे की ओर से पकड़कर ऊपर को

उठाओ। इसके बाद उन्हें अपनी ओर यहाँ तक खींचो,



सिलवेस्टर साहब के ढंग से बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने देना

और फैलाओ कि उन भुजाओं की कुहनियाँ तुम्हारी तरफ़ ज़मीन को छू लें। इस क्रिया से मरीज़ का वक्षःस्थल फैलेगा, और वायु को अंदर प्रवेश करने का अवसर मिलेगा। फिर भुजाओं को उठाकर छाती के पास लाओ, और उन्हें कुहनियों पर मोड़कर, छाती पर रखकर, इस प्रकार दबाओ कि फेफड़ों की वायु बाहर निकले। इस ढंग को भी ठीक शेफ़र साहब के बतलाए हुए नियमानुसार काम में लाओ। डूबे हुओं को इसी तरह साँस लेने देना चाहिए। यदि पास ही कोई दूसरा सहायक हो, तो उससे कहो कि वह मरीज़ के सामने घुटने टेककर, झुककर उसके मुख को साफ़ करे, और उसकी जीभ को रूमाल से पकड़ रक्खे; फिर अमोनिया सुँघावे।

डूबे हुए प्राणी में बाह्य उपायों द्वारा साँस उत्पन्न करने के लिये, लिटाने के पूर्व, पेट को दोनों बाहों के बीच पकड़ो, और उसे दो-तीन झटके दे दो, ताकि उसके पेट और फेफड़ों में भरा हुआ पानी बाहर निकल जाय। फिर बाह्य उपायों द्वारा श्वास लाने के लिये तुरंत लिटा दो, और ऊपर बतलाए हुए ढंग से काम लो।



डूबे हुए प्राणी के पेट से पानी निकालना

(३ लेबार्ड साहब का बाह्य उपायों द्वारा श्वास उत्पन्न करने का ढंग (Laborde's Method of Artificial Respiration)—इस ढंग से उस अवस्था में काम लिया जाता है, जब पसली की कोई हड्डी टूट गई हो। पहले कपड़े उतारते या गले और छाती के ऊपर के कपड़ों को ढीला कर देते हैं, और मरीज़ को चित लिटा देते हैं। फिर रूमाल से मरीज़ की जीभ को पकड़कर बाहर खींचते और दो सेकंड तक उसे बाहर रखकर फिर छोड़ देते हैं। ऐसा एक मिनट में १५ से १८ बार करते रहते हैं। जब स्वाभाविक रूप से श्वास-कार्य प्रारंभ हो जाता है, तो मरीज़ के शरीर को गरमी पहुँचाई जाती है, और शरीर में रक्त-संचार करने का ढंग काम में लाया जाता है।

## अचैतन्य के कारण, पहचान तथा उपचार

| कारण (Cause) | पहचान (Symptoms) | उपचार (Treatment) |
|---|---|---|
| १. सिर में गहरी चोट का लगना | चेहरा पीला पड़ जाता है, आँखें बंद हो जाती हैं, और कभी-कभी क़ै आती है | सिर पर बर्फ़ रक्खो, मरीज़ को आराम पहुँचाओ और शांत रक्खो, तथा पैर में गरमी पहुँचाओ |
| २. मृगी | घुरघुराहट के साथ श्वास का आना, आँख की पुतलियों का छोटी या बड़ी हो जाना, चेहरे का सुर्ख़ पड़ जाना | सिर को ठंढक पहुँचाओ, सिर को थोड़ा ऊँचा करके रक्खो, कपड़े ढीले कर दो, और पैरों में गरमी पहुँचाओ तथा अमोनिया सुँघाओ |
| ३. लू लग जाना | चेहरे का पीला पड़ना, नाड़ी का मंद होना, सिर में दर्द और तेज़ ज्वर आ जाना | सिर को ठंढक पहुँचाओ, शरीर को ढककर गर्म रक्खो, और होश आने पर बर्फ़ चूसने को दो या आम का पना पिलाओ |
| ४. ज़हरीला तरल पीना | चेहरे का सुर्ख़ होना, और पसीना आना, पुतलियों का बढ़ जाना, घुरघुराहट-भरी साँस लेना और उक्त विष की बू मुँह से आना | गले में उँगलियाँ डालकर या पर से सुरसुराकर बेहोशी की अवस्था में क़ै कराओ, और चैतन्य होने पर मीठा तेल या गर्म पानी में नमक मिलाकर पिलाओ |
| ५. अफ़ीम खा लेना | चेहरे का पीला पड़ना, पुतलियों का छोटी हो जाना, मुँह से अफ़ीम की बू आना | क़ै करानेवाली चीज़ें दो ; मरीज़ को जगाते रहो |
| ६. मूर्च्छा | चेहरे का पीला पड़ना, नाड़ी का मंद होना | मरीज़ को नीचा सिर करके लिटा दो, और उसे ठंढी और स्वच्छ वायु का सेवन करने दो। उसके इर्द-गिर्द भीड़ न इकट्ठी होने दो |
| ७. हानिकारक गैसों के उच्छ्वासन से | चेहरे का स्याह पड़ना, घुरघुराहट-भरी श्वास आना | स्वच्छ वायु और बाह्य उपायों से श्वास उत्पन्न करो |

सूचना—जब तक मरीज़ बेहोश रहे, तब तक उसे कोई चीज़ न खिलानी-पिलानी चाहिए।

## नवाँ व्याख्यान

### व्याधियाँ तथा उनसे बचने के उपाय

संसार में जितने प्रकार की व्याधियाँ हैं, उन सबके उत्पादक भिन्न-भिन्न प्रकार के अति सूक्ष्म कीटाणु हैं। ये कीटाणु या तो जीवन-धारी अति सूक्ष्म प्राणी हैं, या वनस्पति। ये इतने सूक्ष्म हैं कि साधारण रूप से नहीं दिखलाई पड़ते हैं, किंतु सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के द्वारा वे भली भाँति देखे जाते हैं। संसार में ये कीटाणु असंख्य हैं, किंतु परमात्मा की कृपा से उनमें से थोड़े ही ऐसे हैं, जो प्राणी संसार में व्याधियाँ उत्पन्न करते या उसे नष्ट करना चाहते हैं। शेष या तो हितकर हैं, या निष्पक्ष। दूध को दही के रूप में बदलनेवाले ये कीटाणु ही हैं। विना औटाए हुए दूध को विगाड़नेवाले भी इन्हीं में से हैं। सड़ाने और गलानेवाले भी इन्हीं के भाई हैं। व्याधियों के कीटाणु ( Germs ) अधिकतर हमारे खाने-पीने के पदार्थों अथवा श्वास की वायु के साथ, या हमारे शरीर के घावों में होकर भीतर प्रवेश करते हैं। हमारे बीमार होने के कारणों में यह कारण सबसे प्रधान है; किंतु इसके अतिरिक्त और भी कारण हैं। दूसरा कारण हमारे रोग-ग्रस्त होने का यह है कि हमारे शरीर को कभी-कभी उसकी आवश्यकता के अनुसार उप-

युक्त पदार्थ नहीं मिलते। इससे शरीर निर्बल हो जाता है, और ये कीटाणु-रूपी शत्रु उस पर धावा बोल देते हैं, या उसके अंदर ही छिपे हुए कीटाणु अवसर पाकर शक्ति-संपन्न हो जाते, वृद्धि को प्राप्त होते और शरीर को नष्ट करना शुरू कर देते हैं। तीसरा कारण हमारे बीमार पड़ने का यह है कि हम ऐसे पदार्थ खा जाते हैं, जो शरीर में विकार उत्पन्न करते हैं। अतः शरीर को स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट रखने के लिये योग्य भोजन, योग्य जल और स्वच्छ वायु की बहुत बड़ी आवश्यकता है। भोजन के विषय में तीन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—( १ ) भोजन के पदार्थ कौन-से होने चाहिए ? ( २ ) भोजन किस भाँति और ( ३ ) किस समय करना चाहिए ?

भोजन—साधारण, सरल और लाभकारी होना चाहिए। उसका स्वच्छ, ताज़ा और कीटाणुओं से सुरक्षित होना आवश्यक है। शरीर को बलिष्ठ और विकार-रहित रक्त से संपन्न रखने के लिये भोजन के पदार्थों का उत्तम होना अनिवार्य है। विख्यात वैज्ञानिक वेलिस साहब का मत है कि हम शरीर के अवयवों के नवसंगठन और उनमें शक्ति तथा उष्णता उत्पन्न करने के लिये ही भोजन करते हैं। जो लोग भोजन केवल स्वाद के लिये करते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। बहुत-से इस स्वाद के पीछे अनावश्यक एवं अहित-कर पदार्थ खा जाते हैं, जैसे लड़के चाट इत्यादि खट्टे और

तिक्त पदार्थ खाया करते हैं। ये पदार्थ विशेषकर शरीर के लिये हानिकारक ही होते हैं। भोजन के साथ चटनी, अचार और नमकीन चीज़ें खाना निर्दोष नहीं कहा जा सकता। कारण, इन सब पदार्थों का भोजन करनेवाला प्राणी प्रायः आवश्यकता से अधिक भोजन कर जाता है। अधिक भोजन शरीर में भार-रूप होता है, और कभी कभी तो विष-तुल्य हो जाता है। अँगरेज़ी में एक बहुत अच्छी कहावत है—"Do not live to eat, but eat to live." अर्थात् खाने के लिये न जीवन धारण करो, बल्कि जीवन धारण करने के लिये खाओ। इस कहावत में कितना सार है, इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं।

**अच्छे भोजन के लक्षण**—(१) अच्छे भोजन में मूल तत्त्व उतने होते हैं, जितने शरीर के लिये आवश्यक होते हैं। (२) भोजन जल-वायु और मनुष्य के स्वभाव तथा प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। आयु, ऋतु, मनुष्य का भार, शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम, स्वास्थ्य, और निर्बलता, इन सब बातों से भी भोजन का संबंध होता है। (३) भोजन ऐसा होना चाहिए कि वह अच्छी तरह और आसानी से पच सके। वह स्थूल और अधिक परिमाण में न किया जाय।

भोजन के उत्तम होने के पश्चात् भोजन पाने के नियमों का जानना तथा उनका पालन करना आवश्यक है। अच्छा

भोजन भी यदि उचित रूप से न खाया जाय, तो उसका अधिक भाग पेट में केवल भार होने के सिवा और कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकता, उलटे हानि ही करेगा।

## भोजन करने के लाभकारी नियम

(१) भोजन धीरे-धीरे शांत-चित्त से खूब चबा-चबाकर करना चाहिए।

(२) भोजन उतना ही करना चाहिए, जो उपयुक्त समय में पच सके।

(३) एक ही प्रकार का भोजन एक बार या सदा न करना चाहिए।

(४) नित्य ठीक और उचित समय पर ही भोजन करना चाहिए। बार-बार मुँह जुठारते रहना हानिकारक है। इससे मंदाग्नि-रोग की उत्पत्ति होती है। दो बार नियमित भोजन के बीच में कुछ न खाना चाहिए, और दिन का भोजन अधिक तथा शाम का अल्प एवं हलका होना चाहिए।

(५) भोजन करने के उपरांत लगभग एक घंटे तक कोई शारीरिक या मानसिक परिश्रम न करना चाहिए। शाम को सोने के समय क़रीब एक घंटा-पूर्व भोजन कर लेना चाहिए।

(६) भोजन के साथ-साथ तथा भोजन के अंत में जल

पीना मंदाग्नि उत्पन्न करता है। भोजन करने के पूर्व जल पीना तो विष-तुल्य है।

(७) भोजन प्रिय तथा भली भाँति पका हुआ होना चाहिए। यदि भोजन मनोनुकूल न हुआ, तो भोजन करते समय पाचक रस (Digestive Juices) आवश्यक परिमाण में न उत्पन्न हो सकेंगे।

(८) भोजन करते समय न तो अप्रिय बातें करनी चाहिए, और न उनके विषय में सोचना ही। कारण, अप्रिय मन से जो भोजन किया जाता है, वह विष-तुल्य हो जाता है। प्रसन्न-मन से रूखा-सूखा भोजन ईश्वर को धन्यवाद देकर करना, उत्तम पदार्थों को अप्रसन्न मन तथा कृतघ्नता-पूर्वक भोजन करने से कहीं अच्छा है।

(९) शारीरिक व्यायाम भी उचित समय पर भोजन के पाचन में सहायता देता है। किंतु अधिक शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम जठराग्नि को मंद कर देता है।

(१०) भोजन के पूर्व लवण-युक्त अदरक का सेवन सदैव पथ्य है। इससे अग्नि की दीप्ति, रुचि और जिह्वा तथा कंठ की शुद्धि होती है। प्रथम मधुर भोजन करे, मध्य में खट्टा और नमकीन और पीछे कटु, तिक्त और कषाय।

(११) भोजन के पहले घी और कड़ी तथा गरिष्ठ चीज़ें खाय; बीच में कोमल, और अंत में द्रव-द्रव्य पान करे

(१२) भोजन के आदि में जल पीने से दुर्बलता और मंदाग्नि, मध्य में पीने से अग्नि की दीप्ति, और अंत में पीने से स्थूलता तथा कफ की उत्पत्ति होती है। इस कारण मध्य में थोड़ा जल पीना लाभप्रद है।

(१३) प्यासा भोजन न करे, और न भूखा जल ग्रहण करे; क्योंकि प्यास में भोजन करने से गुल्म-रोग और भूख में जल पीने से जलोदर-रोग की उत्पत्ति हो सकती है।

(१४) भोजन के पश्चात् धीरे-धीरे एक सौ क़दम टहले।

(१५) अजीर्ण में सोंठ, सेंधा-नमक और हर्र, इनका चूर्ण सेवन करना चाहिए।

(१६) यथासाध्य भोजनोपरांत ताज़े और टटके तोड़े हुए पक्के फल खावे। कारण, उनमें विद्युत्-प्रवाह-सा चलता रहता है। यह शक्ति शरीर के लिये बड़ी गुणकारी है। इस मत की पुष्टि डॉक्टर मुट्ठू-जैसे विख्यात राजयक्ष्मा के चिकित्सक ने की है

**भोजन के कार्य**—( १ ) यह शरीर को काम करने की शक्ति प्रदान करता है , ( २ ) आवश्यक उष्णता प्रदान करता है, और ( ३ ) शरीर की रचना के लिये उचित सामान इकट्ठा करता तथा टूटी-फूटी सेलों का पुनः निर्माण करता रहता है ।

**जल**—भोजन के साथ-ही-साथ शरीर को जल की आवश्यकता पड़ती है । वास्तव में हमारे शरीर का अधिकांश भाग जल ही है । अतः जल का स्वच्छ एवं उपयुक्त होना भी कोई कम आवश्यक नहीं । उसे बीमारियों के कीटाणुओं से सुरक्षित रखना चाहिए । मनुष्य का स्वाभाविक पीने का पदार्थ जल ही है । इसलिये जल को स्वच्छ दशा में प्राप्त करने और वैसा ही बनाए रखने के लिये सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए । अधिकतर बीमारियाँ फैलाने का ज़रिया पानी ही है । पानी के अशुद्ध एवं अस्वच्छ होने के मुख्य कारण ये हैं—

( १ ) पानी में गैसों का घुला रहना । जैसे, कार्बन-द्वि-ओषजन और सड़ते हुए पदार्थों से निकली हुई ज़हरीली गैसें ।

( २ ) पानी में सड़ते हुए पदार्थ और पौदे उसमें कृमि उत्पन्न कर देते हैं ।

( ३ ) कभी-कभी पानी में अहितकर खनिज-पदार्थ घुलकर उसे अयोग्य कर देते हैं ।

पानी में घुले हुए पदार्थों से पानी को साफ़ करने के ये तरीक़े हैं—

(१) पानी को खूब उबाल डाले। इससे उसमें घुली हुई गैसें निकल जायँगी, और कीटाणु और कृमि मर जायँगे। बाद को पानी को ठंढा कर छान डाले।

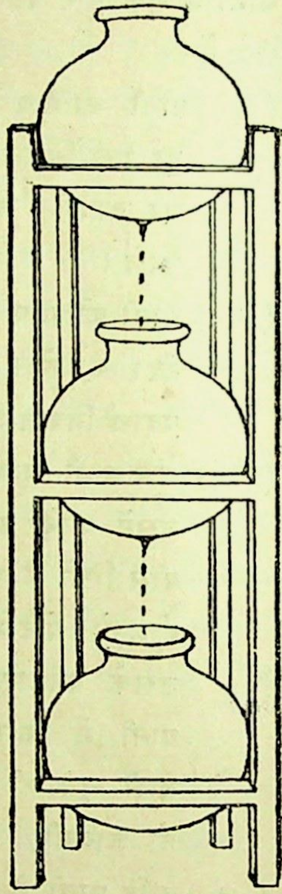
(२) पानी को भाप बनाकर उसे फिर दूसरे वर्तन में ठंढा कर ले। इससे पानी में घुले हुए खनिज-पदार्थ निकल जायँगे।

(३) जब कभी कुए का पानी खराब हो गया हो, उसमें कीड़े पड़ गए हों, या उसमें हैज़े आदि बीमारियों के कीटाणुओं के मिलने की संभावना हो, तो पोटैशियम परमैंगनेट छोड़ दे। इससे उसके कीटाणु और कृमि मर जायँगे। यदि पानी में किसी प्रकार की दुर्गंध है, तो उसमें ताज़े चूने की धूल डाल दो। इससे सफ़ाई हो जायगी।

(४) यदि पानी में बहुत-से तैरते हुए पदार्थ हों, तो उसे तीन घड़ेवाले ढंग से साफ़ करते हैं।

ये तीनों घड़े प्रायः मिट्टी के होते हैं, और एक दूसरे के ऊपर रक्खे रहते हैं। सबसे ऊपर के घड़े में साफ़ किया जानेवाला गंदा जल रक्खा जाता है, इस घड़े की पेंदी में

एक पतला सूराख होता है, जिसमें होकर पानी धीरे धीरे बीच के घड़े में आता है। इस बीच के घड़े में सबसे नीचे एक-तिहाई कंकड़ रहते हैं, और उस-के ऊपर एक पर्त, जो घड़े को एक-तिहाई होती है, लकड़ी के कोयले की होती है। शेष ऊपरी एक-तिहाई भाग में रेत रक्खी रहती है। जो पानी ऊपर के घड़े से धीरे-धीरे इस घड़े में उतरता है, वह पहले रेत में होकर छनता है, जिससे तैरते हुए कण रेत में रह जाते हैं, और कण-रहित जल कोयलों की तह पर पहुँचता है। अभी उक्त पानी में घुली हुई गैसें बनी होंगी। किंतु जब यह पानी कोयले में होकर उतरने लगता है, तो घुली हुई गैसों को कोयला सोख लेता है। और, तब शुद्ध होकर पानी कंकड़ों की पर्त पर पहुँचता है। यह कंकड़ों की पर्त पानी के बचे-बचाए रेत आदि के कणों को



पानी को साफ़ करने का सरल और घरेलू ढंग

रोक लेती है, और तब यह उक्त घड़े के पेंदे के छोटे-से छिद्र में होकर तीसरे घड़े में आता है। अतः इस नीचेवाले तीसरे घड़े का जल साधारण रूप से स्वच्छ हो जाता है। कुओं के जल को सदा स्वच्छ रखने के लिये आवश्यक है कि निम्न बातों पर ध्यान दिया जाय—

(१) कुओं की जगत ऐसी बनानी चाहिए कि उनमें आसपास का बरसात का पानी बहकर न जा सके, और न पत्तियाँ वग़ैरह उड़कर उनमें गिरकर सड़ने ही पावें।

(२) जगत पर कभी किसी को स्नान न करने देना चाहिए ; नहीं तो स्नान करनेवाले के शरीर और कपड़ों की गंदगी और उनमें रहनेवाले रोग के कीटाणु पानी के छींटों के साथ कुएँ में जाकर तमाम पानी को अशुद्ध एवं दूषित कर देंगे।

(३) कुओं के आसपास कूड़ा-करकट न सड़ने पावे, और न चौपायों के अड्डे हों ; नहीं तो बरसात में उनकी सब गंदगी पानी के साथ ज़मीन में धँसकर उन कुओं में पहुँचेगी, और जल को अपवित्र एवं दूषित करेगी।

(४) कुएँ ऐसे स्थानों पर हों, जहाँ छनकर आनेवाला जल किसी स्वच्छ ज़मीन से आवे। तालाबों और गड़हियों के समीप कुएँ खुदाना व्यर्थ है। कारण,

उनके और उन तालाब और गड़हियों के जल में बहुत थोड़ा अंतर होता है ; क्योंकि उन तालाबों और गड़हियों का जल स्रोतों के द्वारा उन कुओं में पहुँचता है।

(५) कुओं में गंदे बर्तन न डालने देना चाहिए। देहातों में प्रायः पशुओं को पानी पिलाने के जो गंदे घड़े होते हैं, उन्हीं को लोग कुओं में डाल देते हैं। मिट्टी के घड़े तो किसी भी हालत में कुओं में न डालने देना चाहिए। सबसे उत्तम उपाय कुओं के पानी को स्वच्छ रखने का यह है कि कुए पर एक डोर और एक लोहे या पीतल का घड़ा हर समय रक्खा रहे, और जिस किसी को जल लेना हो, वह उक्त घड़े से पानी निकालकर अपने घड़े में उड़ेल लेवे।

(६) कुओं के ऊपर टिन आदि का छाजन होना भी आवश्यक है, ताकि उनमें हवा से उड़कर धूल आदि न गिरा करे, और न दरख़्तों की पत्तियाँ ही गिरकर उनमें सड़ें।

(७) कुए, जहाँ तक संभव हो, पक्के कर दिए जायँ। कच्चे और पुराने कुओं में एक प्रकार की दूषित गैस इकट्ठी होती रहती है, जो बड़ी हानिकारक होती है। दूसरे, कच्चे कुओं की दराजों और गड्ढों में

जंगली कबूतर आदि घर बनाते और कुए के जल में बीट किया करते हैं।

( ८ ) कुओं का जल कभी-कभी कुल निकलवाकर साफ़ कराते रहना चाहिए। जिन कुओं पर पुर चलते रहते हैं, उनका जल निर्मल बना रहता है। इसके अतिरिक्त जब कभी आसपास में हैज़ा फैले, तो कुओं में पोटैशियम परमैंगनेट छोड़ते रहना चाहिए। कारण, यह बीमारी प्रायः खाने-पीने के पदार्थों द्वारा फैला करती है। इसलिये कुओं के पानी के अंदर के उक्त प्रकार के कीटाणुओं को मारते रहना चाहिए।

**वायु**—वायु की शुद्धता तो मानव-जीवन के लिये सर्व-प्रथम आवश्यक है। कारण, वायु में धूल के कण, बीमारियों के कीटाणु तथा अनेकों ज़हरीली और हानिकारक गैसें मिली रहती हैं। अतः वायु की शुद्धता और स्वच्छता पर ध्यान रखना आवश्यक है। कमरे, जिनमें हम रहते हैं, ऐसे बने होने चाहिए कि जिनमें स्वच्छ वायु और सूर्य का प्रकाश अच्छी तरह आता रहे। कमरे की वायु को शुद्ध रखने के लिये उसमें कईएक दरवाज़े और खिड़कियाँ होनी चाहिए; ताकि उसमें एक तरफ़ से वायु आती रहे, और तमाम कमरे में चक्कर लगाने के बाद दूसरे दरवाज़ों और खिड़कियों से बाहर निकलती रहे। जिन कमरों में सिर्फ़ एक दरवाज़ा

होता है, और कोई खिड़की भी नहीं होती, उस कमरे की वायु प्रायः एक-सी बनी रहती है। कारण, जिस प्रकार जल से भरे हुए लोटे में और अधिक जल नहीं प्रवेश कर सकता, जब तक कि उस लोटे में कहीं दूसरी ओर कोई छिद्र न हो, जहाँ से होकर लोटे का पानी निकलता रहे, उसी प्रकार जिस कमरे में सिर्फ़ एक दरवाज़ा है, उसकी वायु शुद्ध नहीं रह सकती; क्योंकि उसके अंदर जो गंदी वायु मनुष्य के श्वास फेकने और अग्नि तथा लैंप के जलने से बना करती है, वह नहीं निकल सकती। ऐसे कमरों के दरवाज़े को बंद कर रखना बड़ा ही हानिकारक है। यदि कमरे की वायु किसी प्रकार गंदी हो गई हो, या उसमें किसी प्रकार के रोग के कीटाणुओं के होने की आशंका हो, तो वहाँ गंधक आदि जलाकर शुद्ध कर लेना चाहिए। हमेशा स्वच्छ वायु में रहने और सोने की आदत डालनी चाहिए। कमरे को चारों तरफ़ से बंद करके सोना बड़ा ही हानिकारक है; और यदि कमरे में लैंप जलता रहे, तो परमात्मा ही रक्षक है। जहाँ तक संभव हो, सदा खुली वायु में रहना चाहिए, यदि मौसम ख़राब न हो। स्वच्छ वायु में सोनेवालों तथा गहरी श्वास लेनेवालों को प्रायः क्षय-रोग नहीं होता। सोने के लिये बरामदा अच्छी जगह है; वहाँ ताज़ी हवा हर समय मिला करती है। विलायतवाले ताज़ी हवा की उपयोगिता को ख़ूब समझने लगे हैं। वे इतने ठंढे मुल्क में रहकर भी

बरामदों में सोने लगे हैं। इससे उन्हें बहुत कम क्षय-रोग की शिकायत होती है। फिर हम उष्ण-देशनिवासी ऐसा क्यों न करें ?

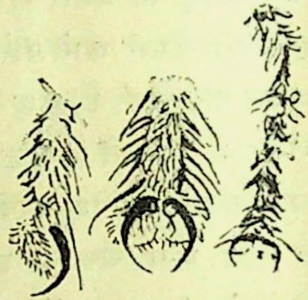
**व्याधियों के कीटाणुओं का हमारे शरीर में प्रवेश**—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, व्याधियों के कीटाणु कई प्रकार से हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। कुछ तो हमारे खाने-पीने के पदार्थों के साथ हमारे रक्त में प्रवेश कर जाते हैं, कुछ वायु द्वारा श्वास के साथ हमारे शरीर में आ जाते हैं, कुछ घावों में होकर अंदर आते हैं, और कुछ चमड़े में प्रवेश करके शरीर के अंदर चले जाते हैं।

हैज़ा, प्लेग, चेचक, जूड़ी-बुख़ार, पेचिश, खजली आदि रोगों के कीटाणु इन्हीं तरीक़ों से हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं। इन कीटाणुओं के वाहक मक्खियाँ, फ़्लीज़ या पिस्सू, मच्छड़, वायु, भोजन और जल आदि हैं। अतः जो कीड़े इन व्याधियों के कीटाणुओं को लाते हैं, उनका नाश कर डालना चाहिए। हैज़े के कीटाणुओं को मक्खियाँ एक जगह से दूसरी जगह ले जाती हैं। मक्खियों के बदन पर अनेक काँटे-से होते हैं। जब ये मक्खियाँ खाने-पीने के पदार्थों पर बैठती है, तो उन पदार्थों के कण उनके इन काँटों पर लग जाते हैं। उनके पैरों में अनेक बाल होते हैं, जिनमें भी वे कण चिपक जाते हैं। हैज़े के मरीज़ की क़ै और दस्त में हज़ारों उक्त रोग के कीटाणु होते हैं। यदि ये क़ै और दस्त

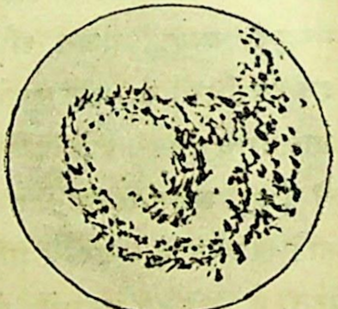
खुले रहें, तो मक्खियाँ उन पर आ बैठेंगी, और उनकी टाँगों पर सैकड़ों हैज़े के कीड़े चिपक जायँगे, जैसा कि चित्र दिखाया गया है। एक मक्खी की टाँगों पर १०,००० हैज़े के कीटाणु पाए गए हैं ! ये मक्खियाँ इतनी छोटी होती हैं, और उनके बदन के रोए भी इतने छोटे होते हैं कि हम उन पर लिपटे हुए कीटाणुओं को, विना सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखे, खयाल ही नहीं कर सकते।



मक्खी की टाँग में रोगों के कीटाणु लिपटे हुए हैं



सामने एक शीशे पर रेंगने वाली एक मक्खी द्वारा छोड़े गए कीटाणुओं का एक चित्र है ! आप खयाल कर सकते हैं कि एक मक्खी ही व्याधि फैलाने के लिये कितनी भयंकर है ! केवल एक मक्खी के शरीर पर ८० लाख रोग के कीटाणु तक पाए गए हैं !

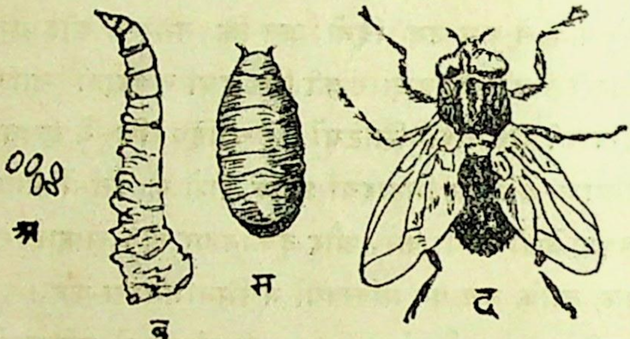


शीशे पर एक मक्खी द्वारा छोड़े हुए कीटाणु

जब ये मक्खियाँ हैज़े से आनेवाली क़ै और दस्तों के ऊपर से उड़कर खाने-पीने के पदार्थों पर जा बैठती हैं, तो उनकी टाँगों से कीड़े उक्त पदार्थों में पहुँच जाते हैं, और फलतः एक स्वस्थ प्राणी उन पदार्थों को खाकर हैज़े का शिकार बन जाता है। बाज़ार की खुली हुई दूकानों की मिठाइयाँ इसीलिये खतरनाक होती हैं। कारण, सैकड़ों मक्खियाँ इधर-उधर से उड़कर उन पर बैठा करती हैं। इसलिये कम-से-कम उन दिनों, जब कि नगर में कोई छूत की बीमारी फैली हो, बाज़ार की मिठाइयाँ न खानी चाहिए। नगरों की म्युनिसिपैलिटियों को चाहिए कि वे हलवाइयों को बाध्य करें कि मिठाइयाँ आदि शीशे के बर्तनों के अंदर रखकर बेची जाया करें, और दूकान पर खूब सफ़ाई रक्खी जाय, ताकि उन पर मक्खियाँ न भिनभिनाया करें।

यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो संसार में मक्खियों की संख्या असंख्य है। कोई ऐसा घर या स्थान नहीं, जहाँ ये न हों। किंतु साफ़ और स्वच्छ स्थानों में, जहाँ खाने-पीने की कोई वस्तु खुली नहीं रक्खी होती, ये मक्खियाँ प्रायः बहुत कम या नहीं भी देखी जातीं। मक्खियाँ कूड़े-करकट, सड़ती-गलती चीज़ों और घोड़ों की लीद तथा अन्य मवेशियों के गोबर में अंडे देती हैं। क़रीब बारह घंटे में इन अंडों में से बच्चे निकलते हैं, जो सफ़ेद रंग के होते हैं, और जिनके न तो पैर और न आँखें ही होती हैं। ये इल्लियाँ ( Maggoto ) उन्हीं

सड़ती हुई वस्तुओं को खाती हैं, और प्रायः १० दिन में वे एक ऐसी परिवर्तित अवस्था को प्राप्त होती हैं, जब कि वे कुछ खाती-पीतीं नहीं। इस अवस्था में उन्हें 'प्यूपा' कहते हैं। क़रीब एक पक्ष में इनमें से पूर्ण युवा मक्खियाँ निकलती हैं। इस प्रकार अन्य कीड़ों की भाँति इनके जीवन की भी चार अवस्थाएँ हैं, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है—




मक्खियों की ४ अवस्थाएँ
( अ ) अंडा, ( ब ) इल्ली और ( स )
और ( द ) पूर्ण युवा मक्खी

ये मक्खियाँ एकसाथ बहुत-से अंडे देती हैं। ये केवल हैज़े को ही नहीं फैलातीं, बल्कि इनके द्वारा प्रायः सभी रोगों के कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाए जाते हैं। यदि किसी को शीतला की बीमारी हुई हो, और ये मक्खियाँ उसके शरीर पर बैठती और चमड़े को स्पर्श

करती हों, तो वे अवश्य अपनी टाँगों पर चेचक के कीटाणु ले आवेंगी, और उन्हें या तो भोजन के पदार्थों पर बैठकर वहीं छोड़ देंगी, या किसी आरोग्य प्राणी के शरीर पर बैठकर वहाँ छोड़ देंगी। इसी प्रकार जब वे किसी क्षयी अथवा राजयक्ष्मा या दमे के रोगी के थूक और बलग़म पर बैठती हैं, तब उसमें मिले हुए उक्त रोगों के कीटाणु उनकी टाँगों पर चिपक जाते हैं; और जब वे भोज्य पदार्थों पर बैठती हैं, तो ये कीटाणु उक्त पदार्थों में मिल जाते हैं। फिर जो प्राणी उक्त पदार्थों को खाता है, वह उन रोगों का शिकार बन जाता है। इससे पता चलता है कि ये मक्खियाँ मनुष्य की महान् शत्रु हैं। इनको नाश करने का यह ढंग है कि मकान में कहीं खाने-पीने के पदार्थ खुले न रहने पावें; जूठन भी इधर-उधर न बिखरा पड़ा हो, मकान के आसपास कूड़ा-करकट न खुला पड़ा रहे, और न कोई चीज़ सड़ती हो। मवेशियों के रहने का स्थान बस्ती से थोड़ी दूर पर हो। पशुओं का गोबर और घर का कूड़ा-करकट रोज़ साफ़ किया जाय, और उसे एक गड्ढे में डालकर उस पर मिट्टी चला दी जाय, अथवा वह खेतों में दूर ले जाकर धूप में फैला दिया जाय, जिससे कीड़े और मक्खियों के अंडे और इल्लियाँ तेज़ धूप में नष्ट हो जायँ। घावों पर भी मक्खियों को कदापि न बैठने दे। जिस घाव पर मक्खी बैठी, उसके बिगड़ने में कुछ भी संदेह नहीं। बहुत संभव है,

उनमें होकर इन मक्खियों द्वारा लाए गए किसी रोग के कीटाणु भी हमारे शरीर के अंदर चले जायँ।

जो बीमारियाँ स्पर्श द्वारा एक से दूसरे तक फैलती हैं, उन्हें छूत की बीमारियाँ ( Contageous Diseases ), जो वायु द्वारा फैलती हैं, उन्हें उड़ती हुई छूत की बीमारियाँ ( Infectious Diseases ) तथा जो भोजन और जल के साथ फैलती हैं, उन्हें भोजन-पान-संबंधी छूत की बीमारियाँ ( Fomites ) कहते हैं। जब छूत का असर एकसाथ बहुत-से मनुष्यों पर और बहुत-से देशों में प्रकट हो, तो उसे एपिडेमिक या महामारी ( Epidemic ) कहते हैं।

अतः वायु को रोग के कीटाणुओं से रक्षित रखने तथा मक्खियों द्वारा उन्हें इधर-उधर से लाकर फैलाने से रोकने के लिये आवश्यक है कि किसी प्रकार के छूतवाले रोगी से निकले हुए कीटाणु वायु में खुले न रहने पावें, या उन पर मक्खियाँ न बैठने पावें। हैज़े के रोगी की क़ै और दस्त को ज़मीन के अंदर, क़रीब दो फ़ीट गहरा गड्ढा खोदकर, उसमें कार्बोलिक एसिड मिलाकर गाड़ देना अथवा जला डालना चाहिए। यदि दैवयोग से कहीं हैज़ा फैल गया हो, तो निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए—

पहली जो बात ध्यान देने योग्य है, वह यह कि चूँकि यह बीमारी भोजन और जल द्वारा मनुष्यों पर आक्र-

मण करती है, अतः जहाँ पर यह बीमारी फैल रही हो, वहाँ के कुओं के जल की सफ़ाई पर पहले ध्यान दिया जाय। कुओं में लाल बुकनी छोड़ते रहना चाहिए, ताकि उनका जल हलका लाल रंग का बना रहे। कुओं में जिस किसी को अपना बर्तन न डालने देना चाहिए, बल्कि एक लोहे का घड़ा वहाँ रख छोड़ना चाहिए, जिससे पानी निकाल-कर लोग अपने घड़ों में उड़ेल लिया करें। जहाँ तक संभव हो, उन दिनों खूब औटाया हुआ जल, जो छानकर ठंढा कर लिया गया और ढककर रक्खा हो, पीना चाहिए। भोजन हमेशा गर्म ही करे। खुला रक्खा हुआ या ठंढा भोजन कदापि न करे। दूध भी उबालकर और उष्ण ही पिए। बाज़ार की मिठाइयाँ कदापि न खाय। कुओं के जल की सफ़ाई के लिये स्थानीय तहसीलदार और कलेक्टर के पास इत्तिला भेजे। भोजन आदि खाने-पीने के पदार्थों पर मक्खियाँ न बैठने पावें। हैज़े के रोगी को पोटैशियम पर-मैंगनेट डाला हुआ जल पिलाना चाहिए, उसमें थोड़ा-सा सौंफ़ का अर्क़ भी मिला हो, तो और अच्छा। एक वैद्य की सम्मति है कि हैज़ा अधिकतर अजीर्ण-दोष से प्रारंभ होता है। बिना सोचे-विचारे, समय-कुसमय, बासी-तिवासी, सड़ा-गला और अत्यधिक भोजन कर लेना हैज़े का खास कारण है। हैज़े के बढ़ने पर पैरों में ऐंठन, शरीर में सुई कोंचने-सी पीड़ा, प्यास लगना, मूर्च्छा, चक्कर, जम्हाई,

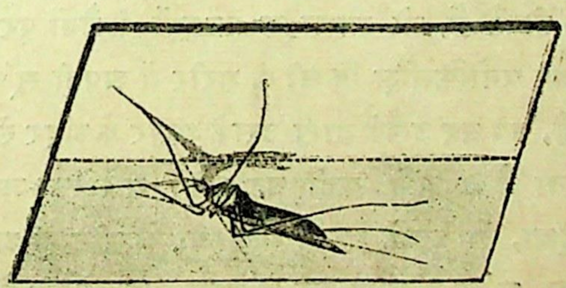
जलन, चेहरे का उतर जाना, शरीर का काँपना, हृदय में पीड़ा आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

**उपचार**—(१) मदार की जड़ की छाल को दूने अदरक के रस में घोटकर उर्द-बराबर गोलियाँ बनावे। इन गोलियों को घंटे, आधा-आधा घंटे पर सौंफ़ के अर्क़ अथवा कुनकुने पानी के साथ देता जाय।

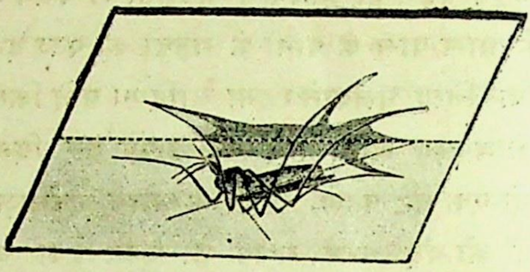
(२) सुहागे का लावा १० माशे, कालीमिर्च १२ माशे, सींगिया विष १ माशा, इन सबको घोटकर रख दे, और घंटे-घंटे पर अदरक के रस में या गुनगुने जल के साथ दे। ख़ुराक १ से २ चावल तक। पानी की जगह पीने के लिये सौंफ़ का अर्क़ और जल मिलाकर देना चाहिए। रोगी को खाने के लिये कुछ न दे। डॉक्टर और वैद्य के बतलाने पर परवल का जूस या मूँग की दाल का जूस देवे। नीरोग प्राणी को अर्क़-कपूर, बताशे के साथ १० बूँद डालकर, भोजनोपरांत खाना चाहिए।

जूड़ी-बुख़ार के कीटाणु ( Malaria Germs ) मच्छड़ों द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। अतः मच्छड़ों का नाश करना आवश्यक है। मच्छड़ गंदे पानी में, जो रुका हुआ हो और जो प्रायः चार फ़ीट से अधिक गहरा न हो, अंडे देते हैं। इसलिये मकान में या उसके आसपास बर्तनों या गड्ढों में खुला हुआ पानी न रहने देना चाहिए। प्रायः बरसात के दिनों में मलेरिया-ज्वर फैलता है। कारण, उन

दिनों मच्छड़ बहुत हो जाते हैं। मच्छड़ों से बचने के लिये मकान के आस-पास के पानी के गड्ढों को पटा देना और मोरियों को नित्य धुलवाते रहना चाहिए। यदि किसी कमरे में अधिक मच्छड़ लगते हों, तो उसमें कई दिनों तक, सोने के दो-एक घंटे पहले, रात के समय दरवाज़ों और खिड़कियों को बंद करके, गधक का धुआ देना चाहिए। इससे मच्छड़ मर जायँगे। मसहरियों के अंदर सोने से भी मच्छड़ों से रक्षा होती है; किंतु सभी मसहरी नहीं लगा सकते। मकानों के आसपास, क़रीब २०० गज़ के इर्द-गिर्द, कोई घास-फ़ूस या पौदे इत्यादि न हों। कारण, इनमें मच्छड़ दिन के समय शरण लेते हैं। मादा-मच्छड़ एक बार में १०० से लेकर २०० अंडे तक देती है। सभी मच्छड़ मलेरिया के कीटाणु नहीं फैलाते। मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़ों की एक विशेष जाति है, जिन्हें अँगरेज़ी में एनोफ़िलीज़ ( Anopheles ) कहते हैं। ये



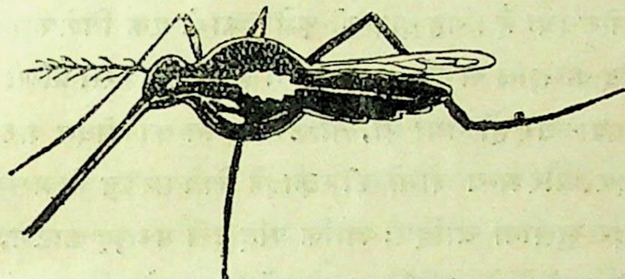
एनोफ़िलीज़



क्यूलेक्स ( साधारण मच्छड़ )

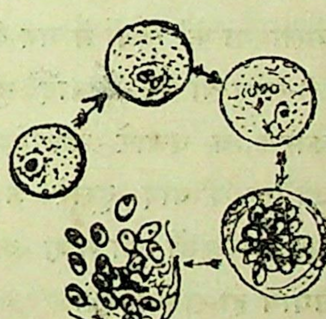
एनोफ़िलीज़ मच्छड़ ही मलेरिया फैलाते हैं। परमात्मा की कृपा से ये अधिक नहीं पाए जाते। इन एनोफ़िलीज़ और साधारण मच्छड़ ( Culex ) में अंतर यह है कि पहला जब कभी कहीं धरातल पर बैठता है, तो सिर को नीचा, धरातल के समीप, रखता है, और शेष शरीर को ऊपर उठाए रहता है। किंतु साधारण मच्छड़ जहाँ कहीं बैठता है, अपने शरीर को बैठने के धरातल के समानांतर रखता है। दूसरा अंतर यह कि एनोफ़िलीज़ के डैनों पर चित्तियाँ ( धब्बे ) होती हैं, जो साधारण मच्छड़ों के डैनों पर नहीं होतीं। जब एनोफ़िलीज़ किसी के शरीर में अपनी सूँड़ को चुभोता है, तब वह उसके द्वारा उसके शरीर के अंदर से रक्त को चूसता है। यदि कहीं वह प्राणी मलेरिया-ज्वर से पीड़ित हुआ, तो उसके रक्त में मलेरिया के कीटाणु अवश्य होंगे। बस, अनेक कीटाणु रक्त के साथ उक्त मच्छड़ के पेट में पहुँच जायँगे। वहाँ पर अवकाश पाकर ये वृद्धि को प्राप्त

होंगे, और आपस में बँटकर एक से अनेक हो जायँगे। उनमें से कुछ तो मच्छड़ की लार में प्रवेश कर जायँगे; और जब यह मच्छड़ किसी दूसरे स्वस्थ प्राणी को काटेगा, तो उसकी लार के साथ ये उक्त प्राणी के रक्त में प्रवेश कर जायँगे। फिर क़रीब एक हफ़्ते में उक्त प्राणी को जाड़ा देकर बुख़ार आवेगा। तब कहीं उसे पता चलेगा कि उसे मलेरिया हो गया है।



मच्छड़

जब कोई मलेरिया का कीटाणु रक्त-बिंदु में प्रवेश कर जाता है, तब वह वहाँ पर बढ़ता है, और एक से अनेक होता है। इस प्रकार एक कीटाणु बढ़कर और बीच से टूटकर दो, २ से ४, और ४ से ८—इसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है। जब ये कीटाणु टूटकर एक से दो बनते हैं, तब

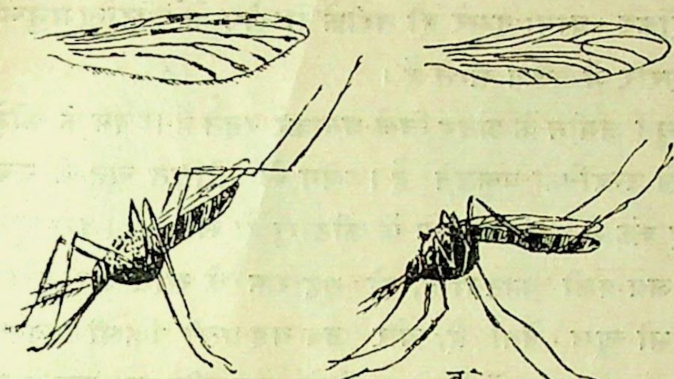


मलेरिया के कीटाणुओं की वृद्धि

रक्त में एक प्रकार का ज़हर उत्पन्न होता है। यही ज़हर जूड़ी उत्पन्न करता है। उधर चित्र में दिखाया गया है कि मलेरिया का कीटाणु किस प्रकार रक्त में बढ़कर एक से अनेक हो जाता है। फिर नए कीटाणु रक्त-बिंदुओं पर धावा करते हैं।

मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये कुनैन एक अक्सीर दवा है। यह दक्षिणी-अमेरिका के एक विशेष प्रकार के पौदे की छाल से तैयार की जाती है। यदि किसी प्राणी को मलेरिया-ज्वर हो गया हो, तो उसे कुनैन का सेवन कराना चाहिए, और अन्य लोगों की रक्षा के लिये मरीज़ को मसहरी के अंदर सुलाना चाहिए; क्योंकि यदि उसे मच्छड़ काटेंगे, तो उनके शरीर में मलेरिया के कीटाणु प्रवेश कर जाँयगे, बढ़ेंगे, और जब ये मच्छड़ घर के दूसरे प्राणियों को काटेंगे, तो उन्हें भी मलेरिया-ज्वर हो जायगा। यही बात है कि मलेरिया के दिनों में घर के प्रायः सभी प्राणियों को साथ-ही-साथ या एक के बाद दूसरे को मलेरिया चपेटता है। कारण, वे बेचारे अपने दुश्मन को पहचान नहीं पाते, जो एक के बाद दूसरे के साथ शरारत करता रहता है। अतः मच्छड़ों को नाश करना ही मलेरिया से बचने का उपाय हो सकता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आसपास के पानी के छोटे-छोटे गड्ढों को तो मिट्टी डालकर पटवा देना चाहिए,




मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़

और बड़े-बड़े गड्ढों के पानी को या तो उलिचवाकर निकाल देना या उन पर मिट्टी का तेल छिड़कवा देना चाहिए। मिट्टी का थोड़ा-सा तेल फैलकर पानी के बड़े गड्ढे को ऊपर से ढक लेगा ; फिर उसमें मच्छड़ अंडे न दे सकेंगे, और न मच्छड़ों के बच्चे श्वास ले सकेंगे। फलतः वे मर जायँगे।

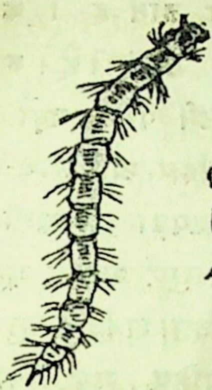
प्लेग की बीमारी बड़ी ही भयंकर एवं संहारक है। यह पहले-पहल चीन-देश में, सन् १८६१ ई० में, हुई थी। यह ठंढे देश में तो बहुत समय तक नहीं रह पाती। कारण, जाड़े की ठंढक इसके कीटाणुओं को मार डालती है। किंतु शीतोष्ण देशों में यह साल-भर बनी रहती है। भारत में इसका प्रचंड राज्य है। प्लेग के कीड़े मनुष्य के शरीर में दो प्रकार से प्रवेश करते हैं—( १ ) या तो श्वास के साथ चले जाते हैं, या ( २ ) प्लेग की फ़्लीज़ द्वारा शरीर में किए गए घाव

में होकर। प्रायः दूसरे ही तरीक़े से प्लेग के कीटाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं।

चूहे ज़मीन के अंदर बिल बनाकर रहते हैं। प्लेग के कीड़े पहले उन्हीं को पकड़ते हैं। प्लेग से पीड़ित चूहे के एक बूँद रक्त में असंख्य प्लेग के कीटाणु हो सकते हैं। इस चूहे को जब फ़्ली काटती है, तो वह रक्त के साथ उन कीड़ों को भी चूस लेती है, और जब यह फ़्ली किसी स्वस्थ मनुष्य को काटती है, तो इनमें से कुछ कीटाणु उक्त घाव में प्रवेश कर जाते और उक्त मनुष्य के रक्त में वृद्धि पाकर उसे अपना शिकार बना लेते हैं। ऐसे प्राणी को तुरंत अन्य लोगों से दूर रखना और उसको प्लेग का टीका लगवाना चाहिए। उसके उतारे हुए कपड़े-लत्ते, विष्ठा आदि को जला डालना चाहिए।

घर में चूहों के अनायास मरने से पता चलता है कि प्लेग के कीड़े बहुतायत से हैं। चूहों के मरते ही उन पर की फ़्लीज़ उनके शरीर को छोड़ देती हैं, और घर के लोगों को पकड़ती और काटती हैं। ये फ़्लीज़ एक चूहे से दूसरे चूहों के शरीर पर जाती रहती हैं, और चूहे एक घर से दूसरे घर को जाया करते हैं, अतः चूहे ही यह भ ंकर महामारी फैलाते हैं। अतएव उन्हें घर के अंदर न रहने देना चाहिए, बल्कि मार डालना चाहिए।

फ़्लीज़ अँधेरे और धूल से भरे कमरों में पैदा होती हैं



( २ )



( ३ )



( ४ )

फ़्ली की अवस्थाएँ

इनके जीवन में भी चार दशाएँ होती हैं। चित्र में उनकी दूसरी, तीसरी और चौथी अवस्था दिखलाई गई है। प्लेग से चूहों के मरने पर फ़्लीज़ कुत्ते, बिल्ली और मनुष्य आदि के शरीर पर आती हैं। अतः चूहों के मरते ही मकान को तुरंत छोड़ देना चाहिए, और मरे हुए चूहों को मिट्टी का तेल डालकर जला देना चाहिए। फिर मकान को कीटाणुओं और फ़्लीज़ के मारनेवाले पदार्थों (Disinfectants) से धुलवा देना चाहिए, और कुछ दिनों के लिये उसे छोड़ देना चाहिए। प्लेग के दिनों में प्लेग का टीका भी लगवा लेना चाहिए।

**कृमि-नाशक पदार्थ**—कार्बोलिक एसिड से प्रायः हरएक चीज़ धोई जा सकती है। विशेषकर मरीज़ के थूक में इसे छोड़ना चाहिए। ताज़े चूने को पानी में घोलकर

विष्ठा आदि में छोड़ने से उसके कीड़े मर जाते हैं । कड़ी धूप भी कपड़े आदि के कीड़ों को मार डालती है। अतः किसी छूतवाले मरीज़ के पास से लौटने पर, कपड़ों को घर के बाहर, कड़ी धूप में फैला देना चाहिए, और हाथ-पैर भी धो डालना चाहिए। मरीज़ के कपड़ों को पानी में उबालकर भी साफ़ कर सकते हैं। जो वस्तुएँ अधिक मूल्य की न हों, उन्हें जला डालना चाहिए। विष्ठा आदि को तुरंत ज़मीन के अंदर गहराई पर गाड़ देना चाहिए। गर्म पानी में साबुन खूब घोल लेने से एक अच्छा और सस्ता कृमि-नाशक पदार्थ बनता है। इससे फ़र्श, कुरसी, चारपाई और क़ीमती कपड़े, जो जलाए नहीं जा सकते, धोए जाते हैं।

चेचक या शीतला के कीटाणु स्पर्श और वायु द्वारा उक्त रोग के मरीज़ के पास से दूसरों तक पहुँचते हैं। मरीज़ के चमड़े के ऊपर फफोलों के सूखने पर, उनकी झुर्रियों में, अनेक चेचक के कीटाणु होते हैं। ये कीटाणु हवा में उड़कर दूसरों तक पहुँच सकते हैं। चेचक के कीटाणु बड़े प्रबल होते हैं। इनका असर सबल और निर्बल, दोनों पर बराबर होता है। इनसे बचने का उपाय केवल टीका लगवाना है। क़रीब एक सौ वर्ष हुए, जेनर साहब ने टीके का अन्वेषण किया, जिससे आज लाखों प्राणी चेचक से रक्षा पाते हैं।

## दसवाँ व्याख्यान

### स्वच्छता और स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के लिये स्वच्छता की परम आवश्यकता है ; क्योंकि रोगों के कीटाणु चारों तरफ़ विद्यमान हैं, जो शरीर के अस्वच्छ एवं अरक्षित रहने पर उसे क्षति पहुँचा सकते हैं। इसके सिवा अस्वच्छता के कारण स्वयं शरीर में ही विकार उत्पन्न हो जाता है, और अनेक रोग पकड़ लेते हैं। अतः स्वास्थ्य के लिये शरीर, घर तथा नगर और गाँवों की स्वच्छता पर विचार करना आवश्यक है।

**शरीर की स्वच्छता**—शरीर को स्वच्छ रखने के लिये नित्यप्रति स्नान करना, नित्य धुले हुए स्वच्छ वस्त्र पहनना, हाथ-पैर के नाख़ून काटना और उन्हें बड़े-बड़े न रहने देना, सिर के बालों को छोटे रखना और उन्हें साफ़ करना आदि विषयों पर ध्यान रखना परम आवश्यक है। जिस प्रकार फेफड़े रक्त-विकार को दूर करने के लिये हैं, उसी तरह शरीर का चमड़ा भी रक्त-विकार को पसीने के रूप में साफ़ करता है।

शरीर पर दो त्वचाएँ चढ़ी हुई हैं। ऊपर की पतला चर्म या उपचर्म ( Epidermis ) कहलाती है, और उसके नीचे का मोटा भाग यथार्थ चर्म ( Dermis ) । प्रतिदिन उप-

चर्म की सेलें घिस-घिसकर गिरती रहती हैं, और उनकी जगह नीचे की सेलें आती रहती हैं। उपचर्म में रक्त-केशिकाएँ या स्नायु नहीं होतीं; नीचे के चर्म में सेलों के अतिरिक्त दोनों होती हैं। इसके सिवा इसमें दो प्रकार की ग्रंथियाँ, उनकी प्रणालियाँ तथा बालों की जड़ें भी होती हैं। इन ग्रंथियों में से एक में तेल-जैसी चिकनी वस्तु बनती रहती है, जो उपचर्म के ऊपर आकर उसे चिकना, और मुलायम बनाती रहती है, नहीं तो वह रूखा और शुष्क होने के कारण शीघ्रता-पूर्वक घिसता रहता। इन ग्रंथियों को चर्बी की ग्रंथियाँ ( Fat glands ) कहते हैं।

दूसरे प्रकार की वे ग्रंथियाँ हैं, जो रक्त की केशिकाओं से एक ऐसा तरल खींचती हैं, जिसे पसीना कहते हैं। इन्हें स्वेद-ग्रंथियाँ ( Sweat glands ) कहते हैं। स्वेद-ग्रंथियों की सेलें रक्त में से कुछ जल, यूरिया और कई प्रकार के लवण-मिश्रित पदार्थ ले लेती हैं, और उक्त मिश्रित पदार्थ को पसीने की नली ( रोम-कूप ) द्वारा उपचर्म के ऊपरी धरातल पर भेजती हैं। पसीना उक्त नलियों द्वारा बहता हुआ इन रोम-कूपों से बाहर आता है। यहाँ पर बाहर की शुष्क वायु उसके जल-भाग को भाप बनाकर ले लेती है; शेष उसमें घुले हुए पदार्थ उपचर्म पर छूट जाते हैं। पसीने की बूँदों के वाष्प-रूप में परिवर्तित होने में शरीर की उष्णता का कुछ भाग निकल

जाता है। इससे शरीर की उष्णता अधिक नहीं बढ़ने पाती।



पसीने और चर्बी की ग्रंथियाँ

इस प्रकार ये ग्रंथियाँ रक्त को साफ़ करने के अतिरिक्त शरीर को मुलायम और साधारण रूप से गर्म भी रखती हैं। संपूर्ण शरीर में प्रायः २४ लाख स्वेद-ग्रंथियाँ हैं।

**त्वचा के कार्य**—(१) यह रोग के कीटाणुओं तथा विषों को शरीर के भीतर घुसने से रोकती है। जब त्वचा कहीं से कट जाती है, तब ये कीटाणु सुगमता-पूर्वक शरीर में घुस जाते हैं। (२) स्पर्शेंद्रिय है। इसके द्वारा हमें शीत, उष्णता, पीड़ा और दबाव का ज्ञान होता रहता है।

(३) त्वचा से पसीने द्वारा रक्त के विकारी पदार्थ निकलते हैं। (४) इसके द्वारा थोड़ी-सी कार्बन-द्विओषित वायु भी बाहर निकलती है। (५) यह शरीर के ताप-क्रम को उपयुक्त सीमा में रखने में सहायता देती है।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, पसीना सूखने के बाद, त्वचा के ऊपर और रोम-कूपों के मुखों पर वे पदार्थ छूट जाते हैं, जो उसमें मिश्रित रहते हैं। अब यदि ये छूट गए पदार्थ स्नान करके धोए जायँ, तो ये उन रोम-कूपों को बंद कर देंगे; और फिर उन स्वेद-ग्रंथियों द्वारा विकारी पसीने का निकलना बंद हो जायगा। फलतः रक्त की शुद्धि में विघ्न खड़ा होगा, और शरीर में कोई चर्म-रोग अवश्य उत्पन्न हो जायगा।

त्वचा के ऊपर जब पसीने की बूँदें पड़ी रहती हैं, उस समय वायु से उड़कर धूल के कण भी उनके ऊपर पड़कर रोम-कूपों को बंद करते जाते हैं। इससे शरीर को नित्य-प्रति मल-मलकर धोना और कभी-कभी साबुन या उबटन भी लगाकर स्नान करना नीरोग रहने के लिये परम आवश्यक है। मल-मलकर स्नान करने से रोम-कूपों के मुखों पर जमे हुए पदार्थ और धूल-कण धुलकर साफ़ हो जाते हैं, और पसीना निकलने के लिये रास्ता साफ़ हो जाता है। इससे यह भी एक बड़ा लाभ होता है कि शरीर से दुर्गंध नहीं निकलती, और चित्त बहुत प्रफुल्लित रहता है।

**वस्त्रों की स्वच्छता**—जो वस्त्र पहने जाते हैं, वे धूल के कणों से मिलकर, शरीर के पसीने से सनकर, मैले होते रहते हैं। जितना ही अधिक कोई वस्त्र श्वेत होता है, उतनी ही अधिक शीघ्रता से उस पर मैल दिखलाई देने लगता है। फलतः कपड़ों की सफ़ाई की आवश्यकता को न समझनेवाले प्रायः ऐसे कपड़े पहनना अधिक पसंद करते हैं, जो गर्दखोर काले या मटमैले रंग के होते हैं। कारण, उन पर मैल शीघ्र दिखलाई नहीं देता। अतः उनकी मैली अवस्था में भी वे उन्हें बहुत समय तक पहन सकते हैं। बहुत-से ऐसे भी प्राणी होते हैं, जो भीतर तो बहुत ही गंदे और बदबूदार, महीनों के धुले हुए, कपड़े पहनते हैं, और ऊपर से एक साफ़ धुला हुआ कोट या कुरता पहनकर जेंटिलमैन बन जाते हैं। किंतु दोनों ही ग़लती पर हैं। पहली श्रेणी के लोगों को तो यह उचित है कि चाहे वे कम क़ीमती ही कपड़े क्यों न पहनें, किंतु पहनें सदा साफ़। वे हम लोगों की आँख में धूल भले ही झोंक दें, किंतु प्रकृति की आँख में धूल झोंकना असंभव है। यदि आप स्वच्छता के नियम को भंग करते हैं, तो प्रकृति आपको दंड दिए बिना न मानेगी। धोबियों की धुलाई बचाकर शायद आप उसे डॉक्टरों और वैद्यों को देंगे, और ब्याज-सहित। दूसरी श्रेणी के लोगों से यह कहना आवश्यक है कि बाहरी वस्त्रों की अपेक्षा शरीर की त्वचा से सटे हुए कपड़ों की सफ़ाई

और स्वच्छता अधिक काम की है। भीतरी कपड़ों को सदा धोबी से धुलाने की आवश्यकता नहीं, बल्कि उन्हें उसी प्रकार स्नान करते समय नित्य धो लेना चाहिए, जैसे नित्य की पहनी धोतियाँ धोई जाती हैं। जो कपड़ा दिन को पहने, उसीको रात्रि को पहनकर न सोना चाहिए; और जो कपड़ा रात्रि के समय पहनकर सोवे, उसे दिन को कदापि न पहने। जो ऐसा नहीं करते और एक ही कपड़ा हफ़्तों तक पहने रहते हैं, उनके कपड़ों से दुर्गंध निकलती है, उनका शरीर स्वच्छ नहीं रहता। बहुतेरे तो इतने गन्दे होते हैं कि एक ही कपड़े को महीनों पहना करते हैं, जिसके कारण उसमें जुए पड़ जाते हैं। ये जुए शरीर के स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँचाते हैं। कभी-कभी तो ये चेचक, खुजली, खसरा आदि चर्मरोगों के कीटाणुओं को एक प्राणी से दूसरे प्राणी तक पहुँचा देते हैं। शरीर को मैला रखकर ऊपर से स्वच्छ कपड़े पहन लेना भी नितांत अज्ञानता है। कारण, बाहरी स्वच्छता की अपेक्षा भीतरी स्वच्छता अधिक आवश्यक है।

इसी प्रकार केशों, नाख़ूनों तथा दाँतों की स्वच्छता स्वास्थ्य के लिये परम आवश्यक है। केशों को सदा छोटे रखना चाहिए, ताकि उनकी सफ़ाई आसानी से हो सके। बड़े-बड़े केश केवल ज़नानी सूरत बनाने के सिवा और किसी विशेष प्रयोजन के नहीं। यदि धूप आदि से बचना हो, तो

साफ़ा या टोप इस्तेमाल करें; किंतु बाल बड़े-बड़े न रक्खें। नखों की सफ़ाई के विषय में केवल इतना कहना है कि वे कम-से-कम हफ़्ते में एक बार अवश्य काटे जायँ। कारण, यदि वे बड़े-बड़े रहेंगे, तो उनके अंदर खाने-पीने के पदार्थ फँसकर सड़ेंगे, और विष उत्पन्न करेंगे, जो भोजन आदि के साथ शरीर में जाकर हानि उत्पन्न करेगा। दूसरे, संभव है, किसी रोग के कीड़े इन नाख़ूनों की दराज़ में छिपे हों, जो हमारे भोजन के साथ शरीर में प्रवेश कर जायँ, या घाव आदि को छूते, धोते या मरहम-पट्टी करते समय, उसमें मिलकर, घाव को और भी अधिक ख़राब कर दें; अथवा किसी रोगी का मल-मूत्र साफ़ करते समय उसके रोग के कीटाणु इनकी दराजों में घुस जायँ, और अवसर पाकर खाने-पीने के पदार्थों के साथ हमारे शरीर में प्रवेश कर हमें भी उक्त रोग का शिकार बना लें। अतः नखों की सफ़ाई और उन्हें सदा छोटा रखना परम आवश्यक है।

दाँतों की स्वच्छता भी बहुत ज़रूरी है। दाँतों की स्वच्छता का स्वास्थ्य से बहुत घनिष्ठ संबंध है। भोजन करने के उपरांत मुँह को भली भाँति धोने और कुल्ली करने के बाद भी दाँतों की दराज़ों में भोज्य-पदार्थ के छोटे-छोटे टुकड़े फँसे रह जाते हैं, जो समय पाकर सड़ने लगते हैं, और एक प्रकार का तरल उत्पन्न करते हैं, जो दाँतों की जड़ों को नष्ट करता रहता है। इससे यदि नित्यप्रति दातून या अच्छे

मंजन से दाँत भली भाँति न साफ़ किए जायँ, तो वे बहुत थोड़े समय में जड़ से कमज़ोर होकर गिर जायँगे। दाँतों का शीघ्र गिरना वृद्धावस्था के आगमन का सूचक है। कारण, भोजन को पचने-योग्य बनाने के लिये, दाँत उन्हें पीसकर छोटे-छोटे कणों में कर देते हैं। यदि दाँत ही न रहेंगे, तो कड़े पदार्थ का भोजन करना असंभव हो जायगा, और नरम पदार्थ भी अच्छी तरह छोटे-छोटे टुकड़ों में न हो सकेंगे। फलतः भोजन न पच सकेगा, अर्थात् पाचन-शक्ति निर्बल पड़ जायगी; और पाचन-शक्ति के निर्बल पड़ते ही स्वास्थ्य गिरने लगेगा। फल-स्वरूप वृद्धावस्था शीघ्र आ उपस्थित होगी, अतः दीर्घजीवी बनने के लिये आवश्यक है कि दाँतों को नित्यप्रति मंजन या दातून से भली भाँति साफ़ करे, और जब कभी कुछ खावे-पीवे, तो दाँतों को खूब धो डाले, और कुल्ली करे। सोने के पहले मुख और दाँतों को खूब साफ़ करे; क्योंकि यदि मुख और दाँतों में भोजन के कण रह जायँगे, तो वे रात को सड़ेंगे, और विष उत्पन्न करेंगे। अतः रात को सोते समय पान खाना या अन्य पदार्थ मुख में रखना बड़ा हानिकारक है। सोकर उठने के उपरान्त दातून या मंजन करना चाहिए। कारण, सोई हुई अवस्था में मुख के अंदर पदार्थ-कणों के सड़ने से दुर्गंध उत्पन्न हो जाती है, और दाँत अस्वच्छ हो जाते हैं।

सिर के बालों के गंदे रहने से उनमें जुए पड़ जाते हैं, जो स्वास्थ्य को ख़राब करते हैं। कभी-कभी तो ये बीमारियों के कीटाणुओं को अस्वस्थ प्राणी के शरीर से स्वस्थ प्राणी के शरीर तक पहुँचाते रहते हैं। अतः बालों में कंघी करते रहना और उन्हें छोटा रखकर साफ़ करते रहना आवश्यक है। बड़े बाल रखकर, आप उन्हें धोकर आसानी से सुखा भी नहीं सकते। इसी कारण स्त्रियाँ अपने बालों को नित्य-प्रति नहीं धोतीं। कारण, उन्हें सुखाने में बहुत समय लगता है। किंतु जब कभी वे बालों को धोती हैं, तब वे उन्हें लकड़ियों से झटक-झटककर ख़ूब सुखा लेती हैं, ताकि बालों की जड़ों में पानी लेश-मात्र न रह जाय। किसी डॉक्टर का मत है कि बालों की जड़ में पानी के धँसने से बाल सफ़ेद हो जाते हैं। यदि इसमें कोई रासायनिक सत्य है, तो उन शौक़ीन नवयुवकों के विषय में क्या कहा जाय, जो बालों को सँवारने और तरह-तरह से मोड़ने के लिये, तेल न मिलने के कारण, उन्हें गीले रखते हैं।

**घर की सफ़ाई**—घर के कमरे ऐसे बने हों, जिनमें प्रकाश और वायु भली भाँति आ-जा सके। यह सत्य है कि जिस घर में सूर्य का प्रकाश नहीं प्रवेश कर पाता, वहाँ डॉक्टर और वैद्य अवश्य प्रवेश करते हैं। अर्थात् जिस घर में भली भाँति धूप नहीं पहुँचती, और स्वच्छ वायु प्रवेश नहीं कर पाती, वह घर स्वास्थ्य के लिये नितांत अयोग्य है।

कारण, अँधेरे और सीड़वाले मकानों में रोगों के कीटाणु पलते हैं। अतः ऐसे घरों में रहना ख़तरनाक है। इसलिये मकान ऐसी ज़मीन पर बनाना चाहिए, जहाँ नमी न हो। वे एक दूसरे से सटाकर इस प्रकार न बनाए जाँय कि उनमें प्रकाश और पवन के संचार में किसी प्रकार की बाधा पड़े। अच्छा तो यह होगा कि प्रत्येक मकान के साथ उसके चारों तरफ़, एक छोटी-सी पुष्प-वाटिका या खुला मैदान हो, जैसा प्रायः जापान में होता है। प्रत्येक कमरे में एक से अधिक दरवाज़े और खिड़कियाँ होनी चाहिए, जिनसे वायु हर समय आकर कमरे को शुद्ध करती रहे।

इसके अतिरिक्त कमरों के अंदर हर एक चीज़ अपने उचित स्थान पर रक्खी होनी चाहिए। सोने के कमरे और बैठक में खाने-पीने के पदार्थ न रखने चाहिए। खाने-पीने की चीज़ें एक कमरे में ढककर रखनी चाहिए। घर में जहाँ तक संभव हो, मक्खियाँ न रहने पावें।

कमरों का फ़र्श नित्य बुहारा जाना चाहिए। दीवालों या छत पर मकड़ियाँ जाले न तनने पावें। घर का कूड़ा-करकट, घर से दूर, ज़मीन के अंदर गड्ढे में डालकर, ऊपर से मिट्टी चला देनी चाहिए। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को मैला रखने से खटमल उत्पन्न हो जाते हैं, जो हमारे शरीर से रक्त को चूस-चूसकर हमें दुर्बल कर देते हैं। ये खटमल छूत की बीमारियों में रोग के कीटाणुओं के वाहक भी हो जाते हैं।

यदि ये उत्पन्न हो गए हों, तो चारपाइयों और कुरसियों की दराज़ों में मिट्टी या ताड़पीन का तेल छोड़कर उन्हें धूप में रख छोड़ना चाहिए।

**नगर और ग्राम की स्वच्छता**—शरीर और गृह की स्वच्छता के पश्चात् नगर और ग्राम की स्वच्छता पर ध्यान देना प्रत्येक नागरिक तथा ग्रामीण का कर्तव्य है। नगर में सड़कों पर कूड़ा-करकट और सड़ी-गली चीज़ें न पड़ी रहने पावें; मोरियाँ नित्यप्रति अच्छी तरह धोई जायँ। नगर और ग्राम के भीतर या समीप में दुर्गंध उत्पन्न करनेवाली कोई वस्तु न हो। नगर में प्रकाश का उचित प्रबंध हो, और वायु को स्वच्छ रखने के लिये कहीं-कहीं पर, घनी बस्तियों के बीच, पुष्प-वाटिकाएँ हों। सड़कों पर पानी का छिड़काव उचित रूप से हो, ताकि धूल उड़कर नागरिकों के फेफड़ों में श्वास-मार्ग से न प्रवेश करे, और न उनके मकान के अंदर के कपड़े-लत्ते तथा सामान को ख़राब करे। नगरों में पुष्प-वाटिकाओं से नगर की वायु की शुद्धता में बड़ी सहायता मिलती है। दूसरे, नगर-वासियों के लिये दिल-बहलाव का एक स्थान मिल जाता है, जहाँ सांसारिक झंझटों को थोड़ी देर के लिये स्थगित कर वे अपने इष्टमित्रों से वार्तालाप और मनोविनोद कर सकते हैं। सड़कों पर वृक्षों की कतार लगवानी चाहिए, इससे पथिकों को छाया मिलती है; साथ-ही-साथ नगर की वायु की स्वच्छता में भी सहायता पहुँचती है। कारण, पौदे

धूप में, वायु में से कार्बनद्विओषित् वायु लेते हैं, जो चीज़ों के जलने और प्राणियों के श्वास लेने से बनती है। इस कार्बनद्विओषित् वायु को वे कार्बन और ऑक्सिजन में विभाजित कर, कार्बन को तो अपने लिये रख छोड़ते हैं, और ऑक्सिजन को बाहर निकाल देते हैं। यही ऑक्सिजन मनुष्य की जीवन-वायु है। इस प्रकार पौदे और वृक्षों द्वारा, प्राणियों और अग्नि से दूषित की हुई वायु शुद्ध होती रहती है। अतः पौदे और वृक्ष प्राणी-मात्र के बड़े उपकारी हैं।

नगर-निवासियों का यह भी कर्तव्य है कि उनके नगर में सड़ी-गली चीज़ें न बिकने पावें दूकानों पर मिठाइयाँ इत्यादि खुली न बेची जायँ। ग्राम-निवासियों का कर्तव्य है कि उन तालाबों में, जहाँ लोग स्नान करते और कभी-कभी जल भी पीते हैं, कोई आबदस्त (शौच) न ले, और न मरीज़ों के गंदे कपड़े धोवे। इसके अतिरिक्त तालाबों के जल को शुद्ध रखने के लिये उनमें मछलियाँ रखनी चाहिए। खुले मैदानों में पाख़ाने न बैठना चाहिए। अच्छा हो, यदि ज़मीन में गड्ढा खोदकर यह कार्य किया जाय, और बाद को ऊपर से मिट्टी से भली भाँति ढक दिया जाय, जिससे बदबू न फैले, और न उनमें मक्खियाँ आदि अंडे दे सकें। पाठक इस बात को पढ़कर हँसेंगे; किंतु यदि वे इसकी उपयोगिता पर ध्यान दें, तो हँसने की कोई बात नहीं। हमें तो कुत्ते और बिल्लियों आदि से इस विषय की शिक्षा लेनी चाहिए। वे

पाख़ाना फिरने के बाद उस पर धूल डाल देते हैं; क्योंकि उनमें यह स्वाभाविक बुद्धि उत्पन्न की गई है। किंतु मनुष्य के लिये क्या कहा जाय। हर काम करने में वह आज़ाद है!

नगरों के बाहर १० फ़ीट लंबी, १ फुट चौड़ी और १½ फ़ीट गहरी खाइयाँ खुदवानी चाहिए, जहाँ लोग मल त्याग करें। इन खाइयों को काम में लाकर १ फुट गहरी मिट्टी से ढक देना चाहिए, जिससे उसमें न तो मक्खियाँ ही अंडे दे सकें, और न बदबू ही निकल सके।

सबसे अच्छा ढंग ऐसी लैट्रिनों का रखना है, जिनमें पानी के पाइप लगे हों, और वे मल-मूत्र को ज़मीन के अंदर-ही-अंदर बहाकर शहर के बाहर ले जाँय। इसके बाद दूसरा तरीक़ा मेहतरों द्वारा मल और मूत्र की अलग-अलग गाड़ियों को बंद कराकर शहर के बाहर गड्ढों में ढकवाना है। पाख़ाने और पेशाब को एक ही बाल्टी में इकट्ठा करना अच्छा नहीं। आख़िरी दोनों तरीक़े ख़तरनाक और बदबूदार हैं। इनसे भी ख़राब संडास रखने की प्रथा है। इससे दुर्गंध निकलती रहती है, जिसका असर घर में रहनेवाले प्राणियों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है, और इसके पास के कुओं का जल ख़राब हो जाता है।

अतः प्रत्येक लैट्रिन के साथ एक पाइप लगावे, और पाख़ाना-पेशाब को ज़मीनके अंदर-अंदर, बड़ी-बड़ी नालियों द्वारा, शहर के बाहर ले जावे, और उसे किसी नदी में गिराने

के बजाय एक तालाब बनाकर उसमें इकट्ठा करे। नदियों में उसे गिराने से एक तो नदी का जल अशुद्ध हो जाता है; दूसरे, एक प्रकार की क्षति भी होती है। सेप्टिक टैंक की विधि से उक्त तालाब या टैंक में पाख़ाने का वज़नी हिस्सा बैठ जाता है, और तरल साफ़ होकर, एक दूसरी नाली द्वारा निकालकर, खेतों की सिंचाई के काम में लाया जाता है। तालाब में बैठे हुए स्थूल पदार्थ को खाद में परिणत कर खेतों में डाला जाता है, जिससे कृषि की ख़ूब उन्नति होती है। प्रयाग की म्यूनिसिपैलिटी ने ऐसा ही किया है। इस तरीक़े से शहर के मल-मूत्र की सफ़ाई बिना दुर्गंध फैले, सरलता-पूर्वक, हो जाती है, और साथ-ही-साथ उसका सदुपयोग भी हो जाता है। आम के आम और गुठली के भी दाम वसूल हो जाते हैं।

मवेशियों के मल-मूत्र की सफ़ाई पर भी ध्यान रखना आवश्यक है; क्योंकि इनमें मक्खियाँ अंडे दिया करती हैं, जो बढ़कर हैज़ा, क्षय, संग्रहणी आदि भयंकर एवं प्राणघातक रोगों को फैलानेवाले होते हैं।

## छूतवाले रोगों से बचने के उपाय

(१) पृथक्करण (Isolation)—छूत की बीमारी के रोगी को सबसे अलग एक कमरे में रक्खे, और इस बात का ध्यान रहे कि उक्त रोगी के कमरे में केवल डॉक्टर या वही प्राणी जाय, जिसे रोगी की सेवा करनी है। इस प्रकार रोग का दूसरों तक पहुँचना बहुत अंशों में रुक जाता है;

क्योंकि ये लोग स्वयं अपने शरीर और कपड़ों को रोग के कीटाणुओं से सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न रखते हैं। इसके विपरीत, रोगी के पास बहुत-से लोगों—एक के बाद दूसरे—के पहुँचने से उसके मस्तिष्क पर बहुत बुरा असर पड़ता है। कारण, उसकी शांति भंग होती रहती है, और फलतः वह शीघ्र कमज़ोर हो जाता है। रोगी को शांत-चित्त रखना सबसे बड़ा और आवश्यक पथ्य है।

( २ ) कृमि-नाश (Disinfection)—इस उपाय से मरीज़ का कमरा, कपड़े, हाथ, कुरसी, मेज़, चारपाई आदि धोए जाकर कृमि-रहित किए जाते हैं। मरीज़ के मल-मूत्र, क़ै, थूक में कृमि-नाशक पदार्थ छोड़कर रोग के कीटाणु मारे जाते हैं।

(अ) साबुन और पानी—ये बहुत सस्ते और उपयोगी हैं। कारण, इनसे सभी वस्तुएँ धोई जा सकती हैं, और उनके ख़राब होने या उन पर धब्बे पड़ने का कोई डर नहीं रहता।

( ब ) कार्बोलिक एसिड—यह एक ऐसा कृमि-नाशक पदार्थ है, जिससे हर एक वस्तु के कीटाणु मारे जा सकते हैं। विशेषकर यह रोगी के बलग़म और पाख़ाने में डालने के काम में आता है। इसको इन सब कार्यों में इस्तेमाल करते वक्त, एसिड का एक भाग पानी के बीस भाग में मिला लेना चाहिए।

( स ) चूने का पानी ( Milk of Lime )—यह एक बहुत सस्ता कृमि-नाशक पदार्थ है, और रोगी के मल-मूत्र के

कृमियों का नाश करने के काम में लाया जा सकता है। किंतु ऐसा करने के लिये ताज़ा चूना लेना चाहिए—चूना एक भाग और पानी चार भाग।

(द) लाल बुकनी (Potassium Permanganate)—यह स्वयं एक विष है, जो और विषों तथा रोग के कीटाणुओं को नाश कर डालता है।

(इ) सूर्य का प्रकाश—सूर्य का तीक्ष्ण प्रकाश हर प्रकार के रोग के कीटाणुओं को मार डालता है। अतः जिन पदार्थों को हम अन्य प्रकार से कृमि-रहित नहीं कर सकते या वैसा करना सुगम नहीं, उन्हें हम सूर्य की तीक्ष्ण धूप में रखकर ख़ूब सुखा लेते हैं।

(फ) गर्म पानी और आग—छूत के रोगी के जिन कपड़ों को हम उबाल सकें, उन्हें उबाल डालना चाहिए; जो कपड़े क़ीमती न हों, उन्हें जला डालना चाहिए।

(३) अस्पताल (Hospitals)—यदि संभव हो, तो रोगी को पास के अस्पताल में पहुँचाना चाहिए; क्योंकि वहाँ अच्छे डॉक्टर, कंपाउंडर तथा नर्सें मरीज़ के रोग की चिकित्सा और देखभाल कर सकती और उसके रोग-कीटाणुओं को अन्य प्राणियों तक पहुँचने से रोक सकती हैं।

## बिसूचिका (हैज़े) से बचने के उपाय

इस विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। यहाँ केवल उस संबंध की मोटी-मोटी बातों का वर्णन किया जायगा।

बिसूचिका एक अँतड़ी की बीमारी (Intestinal Disease) है। अतः इसके कीटाणु भोजन और जल के साथ हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं, और क़-दस्त के साथ बेशुमार बाहर आते हैं, जिन्हें मक्खियाँ अपनी टाँगों पर बिठलाकर इधर-उधर फैलाती हैं। अँतड़ियों के रोगों में बिसूचिका एक प्रबल और भयानक रोग है। प्रायः इस रोग के तीन-चौथाई रोगी मृत्यु के शिकार हुआ करते हैं। यह एक ऐसा रोग है, जिसका विष शीघ्रता-पूर्वक शरीर में व्याप्त हो जाता है। इस रोग के कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश होने के ४८ घंटे के अंदर-ही-अंदर रोग अपना प्रभाव प्रकट करता है। ये हैज़े के कीटाणु नम ज़मीन और पानी में बहुत काल तक जीते रहते हैं। पके चाँवल में ये कीटाणु बढ़ते और उन्नति को प्राप्त होते हैं। सूर्य का तीक्ष्ण प्रकाश और शुष्कता इनका नाश कर डालती है। यदि हम निम्न-लिखित नियमों का पालन करें, तो हैज़े तथा अन्य अँतड़ियों-संबंधी रोगों के कीटाणुओं से रक्षा पा सकते हैं—

(१) सदा स्वच्छ जल पिए। यदि जल की स्वच्छता में कुछ भी संदेह हो, तो उसे उबाल ले, और ठंढा कर छान ले।

(२) खाने-पीने के पदार्थों को कभी खुला न रख छोड़े, और न उनमें किसी को हाथ डालने दे।

(३) भोजन करने या अन्य कोई पदार्थ खाने के पहले हाथ और मुँह, दोनों अवश्य ही धो ले।

(४) रसोई-घर की सफ़ाई पर सदा ध्यान रक्खे। उसमें कभी जूठन इधर-उधर न पड़ा हो, नहीं तो मक्खियाँ आवेंगी। भोजन के पदार्थों को हर समय ढककर रक्खे।

(५) पाख़ाने की सफ़ाई रसोई-घर से किसी प्रकार कम न होनी चाहिए। पाख़ाने को नित्य साफ़ कराकर धुला देना चाहिए; और दूसरे-तीसरे फ़िनाइल के पानी से भी धुला देना आवश्यक है, ताकि पाख़ाने से बदबू न निकले, और न मक्खियाँ ही भिनभिनावें।

जब कहीं हैज़ा फैला हो, तो वहाँ के रहनेवालों को निम्न-लिखित बातें करनी चाहिए—

(१) पीने का पानी सदा उबाला हुआ हो, और वह सदा ढककर रक्खा जाय। यदि पास में लाल बुकनी हो, तो उसे भी थोड़ा-थोड़ा डाल देना चाहिए, ताकि पानी का रंग गुलाबी बना रहे। कुओं में भी यह लाल बुकनी दूसरे-तीसरे दिन डालते रहना चाहिए, ताकि उनके जल का रंग भी गुलाबी बना रहे।

(२) पका और गर्म भोजन ही करना चाहिए। कोई-सा फल या तरकारी कच्ची अवस्था में न खानी चाहिए। यदि खाना ही हो, तो उसे दो-एक मिनट तक उबलते जल में रख-कर या पोटैशियम परमैंगनेट के जल में धोकर खाय। पकाए हुए भोजन के पदार्थों को ढककर रक्खे, और कभी ठंढा अथवा बासी भोजन भूलकर भी न करे।

(३) कभी ठंडा और कच्चा दूध न पिए। दूध को खूब उबालकर, गर्म अवस्था में ही पिए।

(४) भोजन और पानी के बर्तन को गर्म जल में धोकर ही काम में लावे।

(५) हैज़े के मरीज़ को एक अलग कमरे में अकेला रक्खे; उसके कपड़े-लत्ते भी साफ़ रक्खे, और उन्हें किसी को न छूने दे।

(६) मरीज़ के कपड़ों और उसके कै-दस्त के कृमियों का नाश बड़ी सावधानी से करे।

## तात्कालिक चिकित्सकों के लिये कुछ निचोड़ बातें

(१) डॉक्टर की सहायता, घायल या मरीज़ की सुविधा के अनुसार, प्राप्त करना।

(२) डॉक्टर की सहायता प्राप्त करने के पूर्व घायल या मरीज़ को यथाशक्ति आराम पहुँचाना, और उसकी योग्य चिकित्सा करना।

(३) यदि रक्त-स्राव हो, तो उसको तुरंत रोकना।

(४) घायल को हिलाने-डुलाने के पूर्व टूटी हड्डियों की मरहम-पट्टी करना।

(५) दर्द को कम करने का उपाय करना।

(६) खपाच्चियों पर गाँठ लगाना, और पट्टियाँ इस प्रकार बाँधना कि अनुचित दबाव के कारण दर्द न हो।

(७) साधारणतः अपने को शांत रखना, और मरीज़ को गर्म। मरीज़ के लिये इस बात में कहीं-कहीं मतभेद है, किंतु चिकित्सक के लिये तो सदा शांत-चित्त रहना ही आवश्यक है।

(८) उचित सामान की प्रतीक्षा न करके, समीप के पदार्थों का यथासाध्य उपयोग करना।

(९) अपना कार्य शांति और शीघ्रता-पूर्वक करना; उतावलेपन से नहीं।

(१०) भीड़ तात्कालिक चिकित्सक के कार्य में बाधक और घायल को व्याकुल करनेवाली होती है। अतः घायल के चारों तरफ भीड़ कदापि न लगने पावे।

(११) घायल और मरीज़ को स्वच्छ वायु की अत्यंत आवश्यकता होती है, अतः इसका उचित ध्यान रहे।

(१२) सदा सचेत रहे, और अवकाश और सुयोग को व्यर्थ हाथ से न जाने दे।

(१३) मरीज़ के साथ मधुर भाषण करे, और उसे धैर्य दिलावे।

(१४) अपने में और अपने कार्य की सचाई में विश्वास रक्खे।

(१५) अपनी दृष्टि घायल या मरीज़ पर रक्खे, और अपना ध्यान अपने कार्य के उत्तरदायित्व पर।

(१६) सदा इस बात का ध्यान रहे कि मेरा कार्य केवल तात्कालिक सहायता पहुँचाना है, अतः योग्य डॉक्टर और वैद्य की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहे।

---